भगवान महावीर का निर्वाण

२५०० वर्ष पूर्ति दिवस स्मरणार्थ

अमर संग्रह का प्रथम पुष्प

चित समाधी

संग्रह कर्त्ता :

अमरचन्द गोलेछा

चित-समाधी

□□□

□ संग्रह कर्ता :

अमर चन्द गोलेछा
कडलोर (तमिलनाडू)

□ प्रकाशक :

अमर चन्द गोलेछा
कडलोर (तमिलनाडू)

□ मुद्रक :

उत्तम चन्द
कुशल मुद्रणालय
बीकानेर-३३४००१

भगवान महावीर का निर्वाण

२५०० वर्ष पुर्ति दिवस स्मरणार्थ

अमर संग्रह का प्रथम पुष्प

चित समाधी

संग्रह कर्ता:—

अमरचन्द गोलेछा

मिलने का पता:—

अमरचन्द गोलेछा

३ कार स्ट्रीट, तिरूपापुलियुर, कड्डलोर-२ (तमीलनाडु)
(607002)

प्रथमावृति १०००] [वीर संवत् २५००

॥ ॐ ह्रीं नमः ॥

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्री महावीर स्वामी पहोच्या निर्वाण,
श्री गोतम स्वामी केवल ज्ञान
ओ दोय नुं लिजे नाम,
जेथी फले मन वंछित काम

कार्तिक वदी तेरस, चौदस, अमावस्या के रोज—कर्म क्षय की भावना से वर्त नियम तप–जप करना चाहिये। रिषि मंडल स्तोत्र—वीज—अक्षर का जाप और सप्त स्मर्ण वगैरह भाव पूर्वक मौन से पढ़ना चाहिये सो गुरुगम से जान कर करना चाहिये, और दिवाली की रात को निम्नोक्त जाप—गुणणा शुद्ध भाव से मौन पूर्वक करना चाहिये। (रात को वजे ९ से ११ ॥ में)

(१) श्री महावीर स्वामी सर्वज्ञाय नमः ॥
(२००० गुणणा याने २० नवकरवाली) (रात को वजे १२॥ से ३ वजे तक में)

(२) श्री महावीर स्वामी पारंगताय नमः ॥
(२००० गुणणा अर्थात् २० नवकार वाली) (रात को वजे ३ से ६ में)

(३) श्री गोतम स्वामी सर्वज्ञाय नमः ॥
उपोरोक्त पदों में अगाड़ी ॐ ह्रीं श्री अरहं जोड़ कर भी जाप कर सकते हैं जाप का समय गुरुगम से जान कर जो जो समय में जो जो जाप करना चाहिये वो वो समय में वो वो जाप करना, शुभम् !

दिवाली का स्तवन (भ

श्री जिनवर जी के गुण गावो, पूजो पखाल
भर मुक्ताफल थाल वधावो, अङ्गी रची लटकाली है।
आज म्हारी अजर अमर दिवाली,
नेह भर निजर निहाली है; आज ॥ टेर ॥
काती वदि तेरस के दिन से वाधे मंगल माला।
धन धन दीओ धन तेरस को, रिद्धि लहे मत वाली है; आ० ॥ १ ॥
रूप चवदस आई जिन पूजो, केसर चंदन घोली।
नर नारी मिलि पौषध कीजे—वैसी ने धर्मशाली है; आ० ॥ २ ॥
अमावस रो अवसर आयो, पर्व थई दिवाली।
घर घर दीपक ज्योति झिगमिग,
जिन मुंदिर ज्योत सवाई है; आ० ॥ ३ ॥
पाछली राता वीर प्रभुजी, मोक्ष गया सुखकारी।
चौसठ इन्द्रा महोछव कीनो, रात थई उज वाली है; आ० ॥ ४ ॥
गुरु गोतम जी पाम्या केवल, सकल लोक रलि आई।
चौतिवसे सुर महिमा कीनी, गुरु की भक्ति सम्हाली है; आ० ॥ ५ ॥
पहेर पोशाके सब मिल गोरी, गुरु वन्दन ने चाली।
हिलमिल टोली, वाजी भोली, जय जय करवा चाली है; आ. ॥ ६ ॥
लटक लटक गुरु चरणे लागी, लूंछना ले सुखकारी।
सुनि देसना मन में हर्षे, गावे भास रसाली है; आ० ॥ ७ ॥
पड़वारे दिन घर घर तोरण, दीसे झाक झमाली।
ओच्छव रङ्ग वधाई कीजे, सेव सवाई मेली है; आ० ॥ ८ ॥
काती सुदी द्वितीया दिवसे, भाय बीज पण चाली।
पांच दिवश तक थई दिवाली,
रोग शोक सब टाली है; आ० ॥ ९ ॥

निश दिन गुरु नी भक्ति करीने, श्रावक ना व्रत पाले ।
भट्टारकरी सीख सुणी ने "उदय रतन" अघ टाली है,
आज म्हारी अजर अमर दिवाली ॥१०॥

दिवाली का स्तवन

म्हारा वीर प्रभु के दर्शन की म्हारे मन में रह गई रे।
देव शर्मा प्रति बोधन वीर ज आज्ञा दीनी रे,
पीछे आप गये मोक्ष में यह कैसी कीनी रे।
म्हारा वीर प्रभु के दर्शन की म्हारा मन में रह गई रे।
मन में रह गई रे क म्हारा दिल में रह गई रे, ॥ म्हारा० ॥
गोतम गोतम कौन कहेगा कौन लड़ावे लाड़ रे,
किसको जाय कहुंगा स्वामी, आड़ा पड़ गया पहाड़ रे॥ म्हारा० ॥
रात दिवश में सेवा करतो, थी मुझ पे अति मेहर रे,
तब भी आप कहो स्वामी मुझे क्यो नहीं
ले गये लार रे ॥ म्हारा० ॥
अदमुध लट्टा आपरी स्मरी उठे हृदय में लहर रे,
कहां गये वो मोहन मुरती, कहां से लाऊं हेर रे ॥ म्हारा. ॥
जो जो शङ्का मेरे हुंती, तत्क्षण ले तो पुछी रे,
कौन बतावें आगम की भिन्न भिन्न कुंची रे ॥ म्हारा. ॥
में तो ऐसी नहीं जान तो छुटेगा गुरु साथ रे,
अब तो हुई स्वप्ना की माया दर्शन दो दिन नाथ रे, ॥ म्हारा. ॥
वृथा मोह करे तुं चेतन, प्रभुजी हुवा निर्वाण रे,
श्री संघ कहे इन्द्र भुति जी पायो केवल ज्ञान रे, । म्हारा. ॥

निर्वाण आरती

जय जय श्री महावीर जिनन्दा
करत आरती सुर नर इन्दा
वंदन कमल सोहे जिम चन्दा
नृत्य करे सुर—अपछर वृन्दा ॥ जय० १ ॥

रूप निरुपम छे मनुहारा
तेज पुंज गुण अति ही उदारा
भविक जीव के प्राण आधारा
उपकारो हो – अधिक अपारा ॥ जय० २ ॥

धन्य दिवाली दिन जग जाणो
सिध्ध थया जिनवर जग भानो
प्रभुना गुण भवियण मन मानो
बीर वचन से "शिव" पहचानो ॥ जय० ३ ॥

भवोदधि तारक श्री जिन राया
प्रेम करी हूँ प्रणमुं पाया
करु आरती चित उलसाया
भावधरी प्रभुना गुण गाया ॥ जय० ४ ॥

॥ इति आरती पदम् ॥

——

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

श्री गौतम स्वामी जी लब्धी निधानाय नमः

श्रधांजली

स्वयम् के हृदय की चिरंतन ज्योत से मेरे जीवन में धर्म का तेज तथा ज्ञान देने वाले स्वर्गस्थ श्री पुज्य पितादेव श्री एम. पन्नालालजी साहब गोलेछा को सादर नमन सहित श्रद्धाञ्जली अर्पित।

मुझे छोटी उम्र में योग्य बनने को प्रेरणा देकर आप देवलोक को प्रस्थान कर गए। आपकी मुझ पर पूर्ण कृपा दृष्टि रही है। आपके प्रताप से मुझे अनेक संसारिक और परमार्थिक कामों में सफलता मिली है, मिल रही है और भविष्य में मिलती रहेगी। आपके इन महान उपकारों को मैं कभी नहीं भूल सकूंगा।

मुझ मतिमन्द आलसी के द्वारा जो यह अनमोल संग्रह हो सका है वह आपके द्वारा दी हुई परोक्ष शक्ति ही है। जिसका मैं पूर्ण आभारी हूं। इस संग्रह में जो भी कल्याणकारी सार है, उसका पूर्ण श्रेय आपको है तथा जो त्रुटी है वह मेरी है। इन त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मेरा हाथ जोड़कर आपसे नम्र निवेदन है कि मुझे समाधि तथा सम्यकत्व दिलाने में आप मेरे सहायक बनने की कृपा करें।

आपका पुत्र

अमरचन्द गोलेछा का कोटि कोटि नमन स्वीकार कीजियेगा

॥ इति ॥

श्री स्वर्गस्थ श्री पिता देव

श्रीयुक्त एम. पन्नालालजी साहब गोलेछा

जन्म बीकानेर
सं. १९३४, फागन वदी ९

देवलोक बंगलोर
सं. १९८४ भादवा वदी १२

स्तुति

धारेलुं सहु काम सिद्ध करवा, छो देव सांचा तमे ।
ने विघ्नो सघला विनाश करवा, छो शक्तिशाली तमे ।।
सेवेजे चरणो खरा हृदय थी तेने उपाधि न थी ।
एवा. श्री पितादेव तमने प्रणमुं घणां भाव थी ।।

अमरचन्द गोलेछा

(संग्रह कर्त्ता)

॥ ॐ ह्रीं नमः ॥

॥ दादा गुरु श्री जिन कुशल सुरि गुरुभ्यो ममः ॥

धर्म प्रेमी स्व० पुज्य भाई साहब श्री सालमचन्द जी साहब गोलेछा

आपका धर्म में अनुराग था, आपके जरिये मुझे धार्मिक पुस्तकें पढ़ने को प्राप्त हुई तथा श्री कल्प सुत्र का हिन्दी भावार्थ पर्वधिराज श्री पर्युषन पर्व में वांचना तथा सुनाना यह प्रेरणा आप से ही प्राप्त हुई जिसको मैं भूल नहीं सकता।

आपका उपकार मानता हूं

आपके :– काकासा का पुत्र अमरचन्द गोलेछा का प्रणाम स्वीकृत हो।

॥ श्री ॥

धन्यवाद

श्रीमान् स्वर्गस्थ श्री बाधरमल जी साहब समदड़ीया की सुपुत्री श्रीमती जोवन बाई (स्वर्गस्थ श्री उत्तमचन्द जी छाजेड़ की धर्मपत्नी) ने सुना कि मैं धार्मिक किताब लिख रहा हूं और छपवाने का भी विचार है। यह सुन कर उनका दिल धार्मिक भावना से प्रफुलित होकर उन्होंने किताब छपाने के लिये दो सौ रुपये देकर पुस्तक रूपी महल की नींव डाली तथा इस पुस्तक रूपी महल को तैयार कराने में भी वो पुण्यवान आत्मा सहायक बनीं।

भव्य आत्माओं ! इस 'चित समाधि' पुस्तक रूपी महल में प्रवेश करके लाभ उठावें और आत्मा का कल्याण करें।

अमरचन्द गोलेछा

॥ ह्रीं ॥

॥ श्री शान्तीनाथाय नमः ॥

धन्यवाद

इस 'चित समाधि' पुस्तक में मेरे द्वारा अमूल्य संग्रह होकर पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसके धन्यवाद के पात्र मेरे 'पूज्य पिता देव' ही है उनहों का मैं आभार मानता हूं।

इस पुस्तक में जिन जिन पुस्तकों में से संग्रह किया गया है उन उन पुस्तकों के लेखक, सम्पादक, प्रकाशक सभी धन्यवाद के पात्र हैं उनहोंके ज्ञान प्रचार की अनुमोदना करता हूँ। श्रीमान साह कैलाशचंद जी सु० श्री कन्हैयालाल जी सीपानी, बीकानेर ने इस पुस्तक को छपाने में परिश्रम उठाकर सहयोग दिया जिसके लिये में उनका आभार मानता हूं। द्रव्य से भी परिश्रम का माहत्म अधिक समझता हूं जिस के लिए मेरी तरफ से उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन जिन पुण्य आत्माओं ने द्रव्य दिया है वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। उनहोंके नाम द्रव्य देने वालों की नामावली में प्रकाशित किये हैं। स्वयं की लक्ष्मी को हमेशा सुकृत के कामों में सद व्यय करते रहें ऐसी शुभाभिलाषा करता हूँ।

चतुर्विध संघ का दास

अमरचंद गोलेछा

।। श्री सकल मन्त्रधिराज श्री सिद्धचक्राय नमः ।।

इस पुस्तक को प्रकाशित कराने के लिये द्रव्य देने वाले

पुण्यशालियों की नामावली

१०००) सुश्राविका श्रीमती जीवन बाई, बीकानेर
(स्व. श्रीमान उत्तमचंद जी छाजेड़ की धर्मपत्नी)

१०००) श्रीमान अमोलखचंद जी गोलेछा (साधारण फंड)
तिरुपापुलियुर

१०००) श्रीमान स्वधर्मी बन्धु

५००) स्व. श्रीमान् पारसमल जी डुगड़ की धर्मपत्नी
श्री परींगपेठ

३००) श्रीमान् मूलचन्द जी वीजयसिंह जी ढड्ढा,
कड़लोर, एन. टी,

२००) श्रीमती निर्मला बाई कोचर, बीकानेर

१५१) स्व. श्रीमान बिजयराज जी बोहरा की धर्मपत्नी,
वलवानुर

१०१) श्रीमती चांद कुंवर गोलेछा, बीकानेर

१०१) श्रीमती निर्मला नाहाटा, बीकानेर

१०१) श्री स्वधर्मी बहन

१०१) स्व. श्रीमान् उदयराज जी गोलेछा की धर्मपत्नी,
तिरुपापुलियुर

७५) श्रीमती मगाबाई गोलेछा, बीकानेर

५१) श्रीमती सरस्वती बाई (गुजराती), कलकत्ता

५१) श्रीमान् सागरमल जी मूलचंद जी समदड़ीया, सूरत

२५) स्व. श्रीमान मेघराज जी बोथरा की धर्मपत्नी
श्रीमती अमराव बाई पांडीचेरी

२५) श्रीमती विना बाई छाजेड़, बीकानेर

२५) श्रीमती उषा बाई कोचर, बीकानेर

२५) श्रीमती संजु बाई कोचर, बीकानेर

२५) श्रीमती शुशीला बाई सेठी, बीकानेर

२५) श्रीमती पद्‌मा बाई कोचर, बीकानेर

२४) चीलर २

४६०६)

॥ श्री सर्वज्ञ जिनाय नमः ॥

॥ श्री धर्मशील गुरुभ्योनमः ॥

॥ श्री अधिष्टायक देवाय नमः ॥

नम्र निवेदन, मय प्रार्थना

महामन्त्र आराधक

भगवान महावीर निर्वाण २५०० वर्ष पूर्ति दिवस समरणार्थ यह "चित समाधि" पुस्तक आपके सामने प्रस्तुत करते मुझे बहुत ही आनन्द की अनुभुति हो रही है।

यह 'चित समाधि' पुस्तक मैंने भिन्न भिन्न हिन्दी, गुजराती बहुत सी पुस्तकों से तैयार की है, इसमें का कल्याणकारी स्वाध्याय शुद्ध भावनाएं जागृत कराने में कल्याण मित्र का काम करेगा यह निसंदेह है।

मैं विद्वान या लेखक नहीं हूँ, उपदेशिक वचन - शिक्षा मय वचन लिखने योग्य भी नहीं हूँ। उपदेशिक वचन शिक्षामय वचन आदि जो हैं वें सब महापुरुषों के हैं। मैंने तो मेरी अल्प बुद्धि अनुसार सरल भाषा में भाषान्तर किया है, जो शब्दों का अर्थ मेरे ध्यान में नहीं आया उन शब्दों को जैसा सुना, वांचा वैसा ही लिख दिया है। जिसके लिये गुरु गम से जानकारी करने की प्रार्थना करता हूँ।

मतिदोष से दृष्टि दोष से कहीं भी क्षति या अशुद्धि रह

गई हो तो उसके लिए और श्री जिनज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो उसके लिए भी मन-वचन काया की त्रिकरण शुद्धि से चतुर्विध संघ के समक्ष मिथ्या दुष्कृत देता हूं, और सब गुनाहों की क्षमा मांगता हूँ। और जो अशुद्धियें रह गई हैं उन्हें सुधार कर पढ़ने की विनती करता हूँ, और श्री जिमज्ञा प्रमाण करता हूं।

श्री रस्तु कल्याणमस्तु

चतुर्विध संघ का दास

अमरचन्द गोलेछा

❀ ॐ ह्रीं अरह नमः ❀

अ. सि. आ. उ. सा. नमः

卐 नवकार गणवा 卐

उठता ने सूतां, देरक काम करता, नवकार गणवा...
ओ......हो...... (टेक)

ज्या सुधी प्रातः जागीने, महामन्त्र गणाय नहीं त्या सुधी बीजु शु कहेवु ! आखो पण खोलाय नहीं; दिन नी शुद्धि माटे, भाव विशुद्धि माटे नवकार गणवा,......
ओ......हो (१)

ज्या सुधि भोजन ने टाणे, महामन्त्र गणाय नहीं, ज्या सुधी मोढामा अंके, कोलीयो लेवाय नही; तप नो लाभ करवा, अन्न ने अमृत करवा, नवकार गणवा......
ओ......हो (२)

ज्या सुधी घर बहार जाता, महामन्त्र गणाय नहीं, त्या सुधी दरवाजा बहार, डगलु पण मुकाय नहीं; कार्य सिद्धि माटे, धर्म बुद्धि माटे, नवकार गणवा......
ओ......हो......(३)

सुख हासिल करेगा, नमस्कार महामन्त्र के पढ़ने से तरह-तरह की बीमारियां मिट सकती हैं,—पानी की आफत, आतीश की आफत, चोर, सिंह और हाथी की आफत दूर हो सकती है,—रण संग्राम में फतेह मिल सकती है, और सांप-वगेरा के खौफ में भी नमस्कार महामन्त्र पढ़ने से बचाव हो सकता है,
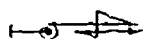
नौ लाख श्री नवकार मन्त्र का जाप क्यों करना चाहिए !

(१) नौलाख नवकार मन्त्र गिनने वाली आत्मा नरक तिर्यञ्च गति में नहीं जाती।

(२) इस लोक व पर लोक के जन्मादि दुःखों के कारण पापों को, नवकार मन्त्र नष्ट करता है, यावत् सब पापों व कर्मों का नाश करके अनन्त सुख रूप मोक्ष को देता है, क्योंकि इस मन्त्र में मोक्ष मार्ग को स्थापने वाले अरिहन्त भगवानों को, मोक्ष में पहुंचे हुए सिद्ध भगवानों को व मोक्ष मार्ग का जीवन में पालन करने वाले आचार्यादि को नमस्कार किया जाता है। नवकार मन्त्र से परम शान्ति मिलती है जन्म मरण जरा व्याधि आदि दुःख की परम्परा नष्ट होती है इसलिए हर एक आत्मा को नवकार मन्त्र रोज गिन [illegible] ना चाहिए।

नवकार मन्त्र की महिमा

(१) यह नमस्कार नवकार पंच परमेष्टी महामन्त्र चौदह पूर्व का सार, स्थायी सुखों का दाता, शरण भूत, तरण तारण की जहाज, महा माङ्गलिक महायशवंत, महा पवित्र, अक्षय अजर अमर पद का दाता, निर्भय स्थान का दाता, मन चिन्तित पदार्थ का दाता, चिन्ता का हरण करने वाला, विघ्नों का विनाश करने वाला, जिन शासन का मूल, ज्ञान दर्शन—चारित्र रूप बोध-बीज का प्रदाता, यन्त्रों में सबसे बड़ा महायन्त्र, मन्त्रों में सबसे बड़ा महामन्त्र, तन्त्रों में सबसे बड़ा तन्त्र, ऋद्धियों में सबसे बड़ी ऋद्धि, सिद्धि में कारण भूत और निराधार का आधार है। इस प्रकार यह नमस्कार मन्त्र महान कल्याणकारी है।

(२) नवकार महामन्त्र को——खान पान के समय—सोते समय जागते समय गांव नगर में प्रवेश करते समय (घर दुकान से बहार जाते समय—आते समय) भय (डर) के समय, कष्ट के समय हर एक कार्य करते समय इस नवकार महामन्त्र का (अर्थ और भावना सहित) चिन्तवन करना चाहिए।

(३) यह नमस्कार महामन्त्र—एक अपूर्व कल्पवृक्ष, चिंतामणि रत्न,—काम कुंभ, और काम धेनु समान है—जो (शख्श) कोई हर हमेशा—इसका पाठ करेगा, मोक्ष का

सुख हासिल करेगा, नमस्कार महामन्त्र के पढ़ने से तरह-तरह की बीमारियां मिट सकती हैं,—पानी की आफत, आतीश की आफत, चोर, सिंह और हाथी की आफत दूर हो सकती है,—रण संग्राम में फतेह मिल सकती है, और सांप-वगैरा के खौफ में भी नमस्कार महामन्त्र पढ़ने से बचाव हो सकता है,
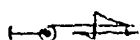
नौ लाख श्री नवकार मन्त्र का जाप क्यों करना चाहिए !

(१) नौलाख नवकार मन्त्र गिनने वाली आत्मा नरक तिर्यञ्च गति में नहीं जाती ।

(२) इस लोक व पर लोक के जन्मादि दुःखों के कारण पापों को, नवकार मन्त्र नष्ट करता है, यावत् सब पापों व कर्मों का नाश करके अनन्त सुख रूप मोक्ष को देता है, क्योंकि इस मन्त्र में मोक्ष मार्ग को स्थापने वाले अरिहन्त भगवानों को, मोक्ष में पहुंचे हुए सिद्ध भगवानों को व मोक्ष मार्ग का जीवन में पालन करने वाले आचार्यादि को नमस्कार किया जाता है । नवकार मन्त्र से परम शान्ति मिलती है जन्म मरण जरा व्याधि आदि दुःख की परम्परा नष्ट होती है इसलिए हर एक आत्मा को नवकार मन्त्र रोज गिनने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए ।

जाप कितने समय में पूरा होता है

रोज १ माला गिनने से २५ वर्ष में, और २ माला गिनने से १२।। वर्ष में, ३ माला गिनने से ८ वर्ष ४ महीने में, ४ माला गिनने से ६। वर्ष में ५ माला गिनने से ५ वर्ष में नौ लाख नवकार मंत्र का जाप होता है। नवकार मन्त्र के माला की नोंध एक छोटी किताब डाल कर उसमें रोज नोंध कर लेना चाहिये, नोंध करने लायक छपी हुई किताब भी मिलती है। नोंध जरूर रखनी चाहिये।

करोड़पति योजना

नमो अरिहन्ताणं

नवकार मंत्र के प्रथम पद (नमो अरिहन्ताणं) की रोज दस माला गिनने से आप ३० वर्ष में करोड़पति बनेंगे। माला की नोंध जरूर रखें।

।। ॐ ह्रीं अर्हम् नमः ।।

।। श्री नमस्कार (नवकार-पंच परमेष्ठी) महामंत्र ।।

योग शास्त्र में श्रावक की दिनचर्या में सबसे पहला कर्त्तव्य श्री नमस्कार महामन्त्र को स्मरण करने का बतलाया है :—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्, परमेष्ठि स्तुति पठन्।

अर्थात् प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठ, निद्रा का त्याग कर परम मंगल के लिये श्री नवकार मंत्र का स्मरण करें ।

अन्य जगह भी कहा है कि "निद्रा के बाद जागृत आत्मा (मौन वृति से समता पूर्वक आवाज रहित) मन में नवकार गिनते शय्या को छोड़ें ।

पूर्व या उत्तर (अथवा जिस दिशा में जिन प्रतिमा में हो उस) दिशा की तरफ मुंह करके (भूमि पर) खड़ा रह कर अथवा सुखासन या वीरा-सान से बैठ कर एकाग्र चित से आवाज रहित मन में नवकार मन्त्र को गिने (चित को एकाग्रता के लिये कमल बंध से अथवा हस्त जापादि से नवकार मन्त्र को गिने)

आनुपूर्वी पढने का महत्व

सागर में पानी घनो, गागर में न समाय ।
पांच पदों में गुण घना, मुझसूं कहा न जाय ॥१॥
अशुभ कर्म के हरण को, मन्त्र बड़ा नवकार ।
वाणी द्वादश अंग में, देख लियो तत्वसार ॥२॥
चंचल मन को स्थिर करण, ठाणांग सुत्र मंझार ।
आनुपूर्वी की रचना रची, आचार्य करन उपकार ॥३॥
पढे न पिंगल-फारसी, पढे नहीं स्वर-छंद ।
एक मन्त्र नवकार से, सदा करो आनन्द ॥४॥
मन मो[illegible] मूंगिया, नवकरवाली हाथ ।
जा[illegible] [illegible]ाथ ॥५॥

श्री पंच सूत्र का पहला पाप प्रतिघात अने गुण बीज आधान सूत्र की महिमा

इस सूत्र का जैसा नाम है वैसा ही गुण है । इसके नित्य स्मरण-पठन-मनन से अनेक भवो के सँचित पाप नाश होते हैं और ज्ञान, दर्शन, चरित्र आदि गुणों के बीजों का आत्मा में वपन होता है । जिसके कारण आत्मा अनादि कर्म मेल का नाश कर सम्यग ज्ञान दर्शन चारित्र का पात्र बन अजरामर पद को प्राप्त करता है । इसके विस्तृत वर्णन से एक बड़ी पुस्तक बन सकती है [परन्तु यहां तो मात्र शब्दार्थ ही लिखा गया है] इस पुस्तक में इस सूत्र का अर्थ दिया गया है । उसे नित्य प्रति दिन अवश्य पढ़ कर लाभ लेवे

स्वाध्याय क्यों ?

मन सब पर असवार है—मन का मता अनेक ।
जो मन पर असवार है—वह लाखन में एक ॥

जैन धर्म सत्य और दया मय है उसका रहस्य प्राप्त करना हो तो, वारंवार स्वाध्याय करना परमावश्यक है, ज्ञान विना धर्म की जड़ मजबूत कैसे होगी इसलिये ज्ञान के उत्तम संस्कार जमाने के लिये स्वाध्याय परम कर्त्तव्य रूप आचरणी योग्य है ।

स्त्री पुत्रादिक घर के काम काज में से समय न मिलने से और अज्ञानता-चपलता के कारण या प्रमाद-आलस के कारण पूज्यपाद गुरु महाराज के पास जाकर धर्मोपदेश नहीं सुन सकते हो तथापि घर का वडिल स्वयं प्रति दिन उन्हें उपदेश करता रहे तो, इससे वे भी धर्म के योग्य होते हैं और धर्म में प्रवर्तमान होते हैं।

धन्यपुर में रहने वाला धन्ना सेठ गुरु के उपदेश से सु श्रावक हुवा था; वह प्रति दिन संध्या के समय अपनी स्त्री और अपने चार पुत्रों को उपदेश दिया करता था। अनुक्रम से स्त्री और तीन पुत्रों को धर्म बोध प्राप्त हुवा, परन्तु चौथा पुत्र भारे कर्मी होने से पुण्य पाप कहां है! इस प्रकार बोलता हुवा बोध को प्राप्त नहीं होता इससे धना सेठ उसे बोध देने की चिन्ता में रहता था।

एक दिन उसके पड़ोस में रहने वाली किसी एक वृद्धा सुश्राविका को अन्त समय धना सेठ ने नियमित्र करा कर भाव पूर्वक कहा कि 'यदि तुम! देव बनो तो मेरे चोथे पुत्र को प्रतिबोध देना'। वह मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवी उत्पन्न हुई। उसने अपनी ऋद्धि दिखला कर धना सेठ के पुत्र को प्रति-बोध किया। इसी प्रकार ग्रहस्थ-श्रावक को भी अपने स्त्री, पुत्रादिक को प्रतिबोध देना चाहिये। कदाचित्

वे भारे कर्मी होवे और बोध न पावे तो उसे दोष नहीं लगता। इसलिए कहा है कि—न भवति धर्म श्रोतुः, सर्वस्य काँन तोहितः श्रवणात्। बुवतो निग्रह बुद्धया, वक्तुस्त्वे-काँततो भवति ॥१॥ "धर्म सुनने वाले सभी मनुष्यों को सुनने मात्र से निश्चय से हित नहीं होता, परन्तु उपकार की बुद्धि से कथन किया होने के कारण वक्ता को एकांत लाभ होता है।

जैन शास्त्रों के हिन्दी अर्थ और धार्मिक पुस्तकों का पठन पाठन करना आत्म कल्याण में सहायक है और मन में अशांति के समय में पुस्तकें पढ़ने से चित धर्म ध्यान में लग जाता है और मन की एकाग्रता भी होती है यह मेरे अनुभव की हुई है, इसलिए स्वाध्याय जरूर करना चाहिए।

उत्तम पुस्तकें सत्संगति का काम करती है, और खराब पुस्तकें सत्संग के सुंदर असर को भस्म कर देती है।

काम-काज में से फुरसत निकाल कर आलस छोड़ कर गुरु महाराज के पास जाकर धर्मोपदेश जरूर सुनना चाहिए।

आत्म शिक्षा

हे जीव! तू अनादि काल से यह चौरासी लक्ष योनि में अज्ञानता से भटकता फिर रहा है और काम क्रोध

मोह मायादि अंतरंग शत्रुओं ने ऐसा फसाया है कि तुझे सारासार (सार असार) की वे अंतरंग शत्रु ख्याल होने नहीं देते, जिससे अनेक लोगों को भास दे रहा है, उसका अनिष्ट फल तुझे भोगना पड़ेगा, इसका भी तु विचार नहीं करता है, तेरे माथे पर काल चक्र भ्रमण कर रहा है सो तुझे कब पकड़ेगा सो भी लक्ष में लेता नहीं, और पुत्र कलत्र लक्ष्मी इत्यादि अपना मान कर बैठा है तथापि वे कुछ भी तेरे नहीं हैं इसका विचार भी तुझे नहीं आता, इस शरीर के ऊपर मोह रखके धर्म क्रिया में पीछे रहता है, शरीर को खूब संभालता है, आत्मा को नहीं संभालता परन्तु यह शरीर तेरा नहीं है यह तू नहीं जानता और न ही जानने की कोशीश करता है, इस भव भ्रमण का अंत ज्ञान दर्शन चारित्र्य रूप रत्न त्रयी के बिना आनेवाला नहीं उस रत्न त्रय के प्राप्ति के लिये तेरा लेश मात्र भी यत्न नहीं है तो इस भव भ्रमण का अंत कैसे आवेगा ? सो तु सोच ले, और तु सदा पाप से पेट भरता है, कुविचार में लीन हो जाता है, समय पर देव गुरु और धर्म की भी निंदा करके व्यर्थ मानव भव हार जाने के कारणों को तैयार करता है। प्रमाद वश होके आत्म चिंतन एक क्षण भी नहीं करता, तो कदापि कुत्ते, बिल्ली, सियाल, सर्प विगेरे तिर्यञ्चों का तथा नारकीओं का भव

तेरे भाग्य में आ गया तो तुझे ऐसे क्षुद्र भव में से छुड़ाने वाला धर्म बिना कौन होगा ! वैसे क्षुद्र भव न आवे वैसे उपाय तुझे क्यों नहीं मिलते, उपाय नहीं करेगा तब तक तेरी स्थिरता न होगी, जैसे भोजन बिना किये भूख नहीं मिटती, जलपान बिना किये तृषा नहीं मिटती सूर्य बिना अंधकार न मिटे, वैसे ही धर्म बिना कभी भी दुःख न मिटे इस बात को कभी भूल मत उस धर्म को बताने वाले सद्गुरु के चरणों में जाना चाहिये, उनके वचनों को सुनना चाहिए सद्गुरू के समागम बिना और उनके बताये हुये मार्ग में बिना चले तेरा रास्ता नहीं उसके सिवाय तेरी भव भ्रमण का अंत नहीं वीर प्रभू की वाणी का स्वाद सद्गुरू के संग से जो करेगा तो ही सच्चे सुख का अनुभव कर सकेगा, फिर भी तू जानता ही है कि :—जैसा करे तैसा पावे, फिर भी दूसरे की निंदा करके पाप से पेट भरने को तैयार रहता है मगर आत्म निंदा तो करता नहीं, फिर संसार समुद्र से कैसे तरेगा, इस वास्ते इनका खूब विचार करके अन्य की निंदा करने की टेव अवश्य निकाल देना और बार बार आत्मा को हित शिक्षा देने को तैयार रहना प्रभात में (सुबह उठकर) धर्म भावना के उच्च-विचार जैसे शांत चित्त से होते हैं, वैसे शुभ विचार दूसरे समय में होना मुश्किल है इसलिए सुबह घंटे दो घंटे का समय आत्म भावना में निकाल कर समायिक प्र

कमरण, पुस्तक वांचन वगैरह से समय सफल कर और प्रमाद को छोड़ कर नीचे लिखी हुई बातें ध्यान में रखकर खूब मनन करें।

हितोपदेश

(हे आत्मा) जिस प्रकार भूख लगे तो खाने के वास्ते तृषा लगे तो पीने के वास्ते, पैसा कमाने के वास्ते, पुत्र पुत्रिओं को संभालने के वास्ते, संसार के मजुरी रूपी कार्यों में तो किसी को कुछ पूछना पड़ता नहीं, जल्द प्रवृति होती है; तो फिर यह आत्मा अनादि काल से संसार रूपी बंधन में पड़ी है, तो उसको छुड़ाने के वास्ते लेश भी उद्यम क्यों नहीं करता। हे चेतन! जरा लेश मात्र चक्षु खोल जब कभी भी सुकार्य में पुरुषार्थ बिना किये संसार रूपी फंद से छूट नहीं सकेगा, वास्ते आत्महित करने को तैयार होजा, सद्गुरू का संयोग प्राप्त कर उन्हीं की सेवा करके आगम में प्रकाशित किये हुए तीर्थंकर गणधरों के बताए हुवे धर्म को पहिचान ले, ज्ञान के विचार कर, स्वधन और परधन को पहिचान, मोह के नशे से असत्य वस्तु को सत्य समझ के भ्रम से भूले हुवे सांसारिक सुख को सत्य सुख समझ के क्यों अकुलाता है। वीतराग परमात्मा कथित सत्य तत्व से अँजान रहके अपनी आयु व्यर्थ गुमा के अधोगति क्यों प्राप्त करता है। सुख की आशा

से बाह्य वस्तु की प्राप्ति के वास्ते यत्न कर रहा है। परन्तु हे मोहान्ध आत्मा ! तू इतना भी नहीं सोचता कि सत्य सुख तो आत्मा में रहता है। पोदगलिक वस्तु तो नष्ट होने वाली है। इसके भरोसे आत्म सुख मत खो। किसी भी जड़ पदार्थ में सुख नहीं है। शरीर में जो सुख होता है वह मृत शरीर में भी होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि–"सुख आत्मा का गुण है" कर्म के आवरण से संसारी जीवों का सुख तरोभूत रहता है। और सिद्धों के कर्म का नास होने से वही सुख आविर्भूत होता है। तात्विक सुख तो आत्मा में ही रमता है परन्तु दुःखदायी विभाव दशा को तू अनादि काल से अपने गले लगा के फिरता है। उसको छोड़, स्वभाव दशा को प्राप्त कर। परन्तु अभि तुझमें रस लोलुपता अधिक है। समभाव से आशंसा रहित तपश्चर्या करता नहीं। उपवास, आम्बिल, एकासणा, आखिर उणोदरी व्रत भी समभाव से करता नहीं। नवीन नवीन चीजें खाने की इच्छा किया करता है। परन्तु इच्छा निरोध करता नहीं। जिस वस्तु की इच्छा भई उसको रोकता नहीं। संसार के अनेक कार्यों का तू चितन करता रहता है। कभी काम राग में, कभी स्नेह राग में कभी दृष्टि राग में, कभी कुदेव में जिसमें देवपना की गंध भी नहीं कभी कुगुरु में– जिसमें गुरूपना का अभाव है कभी कुधर्म में–जिस

धर्म से अनेक जीवों का नाश होता है ऐसे असत्य धर्म में, कभी मनोदंड में कभी वचन दंड में—न बोलने लायक वचन बोल के, कभी काय दंड में, कभी हास्य, रति, अरति, भय, शोक दुगंछा में कभी कृष्णादि तीन अशुभ लेस्या में, कभी रस गारव, ऋद्धिगारव, शातागारव में लीन होके संसार की वृद्धि के कारणों का तू चिन्तवन करता है। तो हे चेतन ! तू किस प्रकार से स्वभाव दशा प्राप्त करके संसार समुन्द्र का पार पावेगा ? यह तुम्हारे आत्मा के शत्रु है या मित्र ! शास्त्रकार तो उनको आत्मा के कट्टर शत्रु कहते हैं। तो क्या ऐसी जबरदस्त माहराजा की सेना को पीछे न हटायेगा ? तेरा सत्यानाश करने वाली यह सेना है। हे चेतन ! और तेरे ऊपर अठारह पापस्थानों का कितना जोर शोर से हमला है। तेरी जिंदगी का अब तक का विचार करले की कौनसा दिवस मेरा अच्छा गया है । जिस दिन एक भी पापस्थान का सेवन न किया हो ! ऐसा दिन शायद न निकले । क्या यह आत्मा की निर्बलता—हीन सत्वता नहीं तो और क्या है ? सिर्फ सुवह व संध्या को जब पतिकमण करता है तब पहिले प्राणातिपात, दूसरे मृखावाद इत्यादिक नाम मात्र बोल जाता है। परन्तु वे सब शब्दों में ही रह जाते हैं। सुवह या शाम वे सब बोल के दूसरे रोज यदि इनसे बच जावे—अर्थात-पापस्थान को न सेवे तो कैसा आनंद आवेगा ? थोड़ा

अनुभव करके अमुक दिवस में एक नो पापस्थान का समागम करना नहीं है ऐसा निश्चय करके उस पर और थोड़ा सा भी लक्ष देगा तो जरूर उसको कुछ अंश से दूर कर सकेगा। शब्द का उच्चारण करने के बाद उसके ऊपर विचार करके शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृति करने से ही आत्मा को लाभ होता है। सर्प अथवा सिंह को देख कर सर्प, सर्प......, सिह, सिह......, ऐसे शब्द बोले परन्तु पीछे न हटे तो सर्प अथवा सिह प्राण का नाश कर देते हैं। वैसे ही पापस्थानक बोल के भी उन से पीछे न हटे तो वे पापस्थानक भाव प्राण जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य का नाश करें तो उसमें आश्चर्य क्या ? स्वर्ण या हीरादिक को देखके मुखसे स्वर्णादिक बोले मगर साक्षात् देखने पर भी ग्रहण न करे, और कांच के टुकड़े ही ग्रहण करे तो क्या वह धनवान हो सकता है ? नहीं हो सकता वैसे ही जीवादिक नवतत्व का ज्ञातव्य हो, परन्तु उसमें रहे संवरतत्व का आदर ही न करे, निर्जरा को स्वीकार न करे, फिर जानने मात्र से बिना प्रवृति के किस प्रकार कल्याण कर सकेगी।

हे आत्मा ! तू आश्रव को त्याग, संवर को आदर व निर्जरा को स्वीकार और ज्ञान सहित धर्म क्रिया कर।

मौनानंद

हे आत्मा ! मौन एक ऐसा उत्तम पदार्थ है, जो कि अपने आत्म स्वरूप को प्रकट कर देता है।

हे आत्मा ! इसको (मौन) तप, जप, ध्यान और यौगिक क्रियाओं में भी परिपूर्ण सत्कार मिला है। इसको स्वीकार किये विदुन मोक्ष मार्ग दुःसाध्य है नीतिकार ने भी लिखा है कि "मौन सर्वार्थ साधनम्" इस अमूल्य पद से यह स्पष्टतया प्रकट है कि उच्च शिखर पर पहुंचाने वाला मौन एक उत्कृष्ट साधन है।

मौन तीन प्रकार को होते हैं :—

(१) जघन्य (२) मध्यम (३) उत्कृष्ट।

(१) जघन्य मौनः—कई एक भव्यात्मा ऐसा मौन रखते हैं कि सावध भाषा का परित्याग कर निर्वध वचन बोलते हैं यह जघन्य मौन कहा जाता है।

(२) मध्यम मौन :— कई एक लोग वचन कलाप को रोक कर हूँकारादि शब्दों से तथा हस्त, चरण, मुख, नेत्र और मस्तक वगैरह से अङ्ग चेष्टा करते हैं एवम् पत्रादि को पर लिखकर अपने अभिप्राय को सूचित करते हैं यह माध्यम मौन कहा जाता है।

(३) उत्कृष्ट मौन :— कई एक आत्मार्थी भव्यात्मा उपरोक्त समस्त कर्त्तव्यों का परित्याग कर आत्मीय गुणों में निमग्न हो जाते हैं यह उत्कृष्ट मौन कहे जाते हैं।

नवकार (नमस्कार) महामन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। एसो पञ्च णमोक्कारो, सव्व पाव प्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं।

[यह महामन्त्र है इस महामन्त्र का हर एक को हर रोज हर समय बारंबार समरण (मन में जाप) करना चाहिऐ]

यह नवकार महामन्त्र अनादि है:—

"आगे चौबीसी हुई अनंती, होशे वीर अनंत।
नवकारतणी कोई आदि न जाणे, एम भाखे श्री अरिहन्त"

प्रत्येक तीर्थङ्करों के शासन में नमस्कार—महामन्त्र यही था इसमें रद्दो-बदल कभी नहीं होती। इस महामन्त्र की महिमा अपरम्पार है।
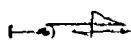
चत्तारि मंगलं

भव भ्रमण में से अपना उद्धार करे वो मंगल अनादि काल से संसार में भ्रमण करने वाली मेरी आत्मा में अव आत्मा की शुद्ध दशा प्रकट करने की इच्छा (जिज्ञासा)

जागी है। सो हे परमात्मन् ! मेरे को वो कार्य सिद्ध कराने में कौन मददगार (मंगल रूप) होगा।

चत्तारि मंगलं (जगत में सर्वोत्कृष्ट मंगल चार हैं) जो मंगल शाश्वता हैं (१) 'अरिहन्ता मंगलं' (२) 'सिद्धा मंगलं' (३) 'साहु मंगलं' (४) 'केवलि पन्नतो धम्मो मङ्गलं'।

(१) आत्मा के शत्रु जो-काम क्रोध, मोह, माया, लोभ, राग, द्वेष इत्यादि को नष्ट करके आत्म दशा प्राप्त करके अनंता ज्ञान, दर्शन प्रगट करके जगत के नित्यानित्य भावकी समीक्षा करके आत्मोन्नति का मार्ग बताते हैं। वे "अरिहंत देव ही प्रथम मंगलं हैं"।

(२) जो कर्म बन्धनों से, कार्य कर्मो से मुक्त होकर सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के लिए जो कार्य सिद्ध करने है वो कार्य सिद्ध करके जो कृत कृत्य हो गये हैं और शुद्ध चैतन्य धन आत्म दशा को जिन्होंने प्रगट कर लिया है वे "सिद्ध परमात्मा ही दूसरे मंगलं हैं।"

(३) आत्मोन्नति के सच्चे मार्ग को जानने के बाद, आत्मोन्नति के लिए जिन्होंने धन, धरा, कुटुम्ब कबीलों को त्याग करके दुःसह परिषहो को सहन करने का अटल निश्चय करके भिक्षावृति से जीवन निर्वाह चलाने का निर्णय करके पूरा समय आत्मिक जागृत्ति में बिताते हैं ऐसे

छट्ठे गुण स्थानक के धारक "साधु साध्वी ही तीसरे मंगलं हैं"।

(४) "राग द्वेष रहित महापुरुषों द्वारा आत्मोन्नति के देखे हुवे, जाणे हुवे (मालूम किये हुवे) और निष्कर्ष रूपे तारने वाले सिद्धान्तों को और नियमों को, जिस आगमो में बतलाए हुवे हैं वे धर्म के सिद्धान्त आत्मोन्नति की इच्छा वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए हितकारी है। इसीसे केवलीये परूपेलो धर्म चौथा मंगलं है।"

यह चार मंगलं ही सदा के लिए (कायम्मी) शाश्वता मंगलं है, जो कभी भी अमंगल होते ही नहीं, लोक के अंदर जितने मंगल हैं उन सब मंगलों में यह चार मङ्गल उत्तम हैं। इसलिए यह चार मङ्गल लोक के लिए उत्तम हैं "चत्तारि लोगुत्तमा" (यह चार पद लोक में उत्तम हैं)। "अरिहन्ता लोगुत्तमा" "सिद्धा लोगुत्तमा" "साहु लोगुत्तमा" "केवलि पन्नतो धम्मो लोगुत्तमा"

उत्तम का शरण छोड़ कर मध्यम या कनिष्ट का शरण कौन ग्रहण करे ? इसलिए हे परमात्मन ! मैं निर्णय करता हूं कि यह चारों शरणे, मेरी आत्मा के लिए हित कारी हैं जिससे "चत्तारि शरण पवज्जामि" (मैं चारों शरण शरणा अंगीकार करता हूँ ?) (१)—"अरिहन्ता शरणं पवज्जामि" अरिहन्ता का शरण अंगीकार करता हूँ। (२) "सिद्धा शरणं पवज्जामि" सिद्धा का शरण अंगीकार

करता हूँ। (३) "साहु शरणं पवज्जामि" साधु साध्वियों का शरण अंगिकार करता हूँ। (४) "केवलि पन्नत धम्म शरणं पवज्जामि" केवली परूपेला (स्थापित) जैन धर्म का शरण अङ्गीकार करता हूँ।

अहो परम कृपालु

जगत गुरुदेवो ! अरिहन्त परमात्मा ! इस भव में और पर भव में जब तक मुक्त नहीं होजाऊं तब तक सदा के लिए आप श्री ओ का शरण अंगीकार करता हूँ और परम सुख शांति, समाधि, आनंद प्राप्ति के लिए तथा दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक, दूर करने के लिये, और जन्म, जरा, (बुढ़ापा) मरण से मुक्त होने के लिए, अरिहन्त, सिद्ध, साहुः केवलि प्ररुपित धर्म, यह चारशरणा मुझे भवो भव होजो आपकी शरणं से आपकी स्तुति भक्ति गुणग्रम करने से मेरा उपयोग आप श्री के गुणों में प्रवर्तन करने से आपके जैसा उज्ज्वल, निर्मल, निर्दोषी, निर्विकारी, महागुणी, महाज्ञानी, महाध्यानी, महा संयमी, महासंवरी, महा समाधिवंत बनूंगा इसमें मुझे थोड़ी भी शंका नहीं है, इसलिए मेरे मन वचन काया के योगों को आपके चरण कमलों में समर्पण करता हूँ और मेरे मन वचन काया के योगों को आपके चरण कमलों में समर्पण करने से मेरे में अनादि काल से रही हुई कुबुद्धि, कुटेव, कुसंस्कार वे सर्व क्षय होंगे।

और आपके जैसी सुबुद्धि, सुटेव, सुसंस्कार मेरे में प्रगट होंगे और अनादिकाल के जन्म, जरा मरण, वेदना महा वेदना, भयंकर वेदना, असह्य वेदना, प्रतिकूल संयोगों तथा दानांतराय, लाभाँतराय, आदि अनेक प्रकार के अंतरायों नाम की गाढ़ी नीवड़ चीकणी कर्मों की प्रकृतियां बांधी हुई हैं वे सब क्षय होगी। मुझे पूर्ण श्रद्धा पूर्वक भरोसा (खातरी) है कि जिनकी शरण जाते हैं उनके जैसे बनते हैं (होते हैं) इसलिए आपके जैसी जल हलती ज्योत प्रगट करने के लिए हे गुरुदेव (जगत गुरु अरिहन्त परमात्मा) मुझे स्वीकारो, मेरा उद्धार करो, निस्तार करो, डूबतों को तारो, मेरी आत्मा में अनंता जन्म, जरा मरण, रोग, शोक, आधि, व्याधि उपाधि जैसे कर्म हैं उनका आपके प्रताप से नाश (नष्ट) होगा। मैं आपकी शरण आया हूँ।

श्रावक की तीन मनोरथ भावना

१. कब मैं बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करके अपनी आत्मा को सुखी करूंगा और दोनों प्रकार का परिग्रह महा पाप का मूल है दुर्गति को देने वाला है। कषाय के स्वामी है। अनर्थों के उत्पन्न करने हेतु भूत है। दुर्गति में ले जाने वाले हैं। बोधी बीज रूप सम्यक्त्व के घातक हैं। सत्य, संतोष, ब्रह्मचर्य, शांति, मार्दव, आर्जव, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, चरण सीतरी, करण

सीतरी, बारह भावना, पंच महाव्रत इत्यादिक धर्मराज के सैन्य को पीछे हटाने वाले हैं ~~लेकर~~ अधोगति में पहुंचाने वाले हैं। ऐसे परिग्रह को जब मैं दूर करूंगा–उस वक्त मेरे लिए सोने का सूर्य उगेगा मेरी आत्मा आत्मिक सुख में लीन होगी वह दिन कब आयेगा यह पहिला मनोरथ है।

२. कब मैं पञ्चमहावर्त लेकर पंच समिति, तीन गुप्ति यह आठ प्रवचन माता का आदर करूंगा! तथा घोर अभिग्रह को धारण करके ब्यालीश दोष रहित शुद्ध आहारी बनके बारह भेद से तप करके सकल कर्म को तोड़ के मेरी आत्मा का उद्धार करूंगा! और अंत आहारी, पंत आहारी अरस आहारी, विरस अहारी, सर्व रस का त्यागी होकर के धना काकंदी धना शालिभद्रादिक मुनिवरों की तरह त्यागी बनके शुद्ध संयम धारी होकर के कर्म शत्रुओं को कब हटाऊंगा? "धन्य धन्य वह दिन कब आयेगा जब मैं संयम लेऊंगा शुद्धजी" इत्यादिक संयम ग्रहण करने की भावना प्रकट करके संयम ग्रहण कब करूंगा? जब मेरे संयम लेने का दिवस आवेगा तब मेरे मन के मनोरथ सफल होंगे और उसी दिन मैं भाग्यशाली होऊंगा यह दूसरा मनोरथ है।

३. कब मैं अट्ठारह पाप स्थानों को आलोड़न करके निःशल्य होकर के चौदह राज लोक के सभी जीवों को खमा के सभी वृत संभाल के अठारह पाप स्थानकों को त्रिविध २

मार्ग से क्षीण करके चारों आहार का पच्चक्खाण करके अंतिम श्वासोश्वास से इस शरीर को भी क्षीण करके तीन प्रकार की आराधना करता भया, चार मंगलरूप चार शरण को उच्चारता भया, संसार को पृष्ठ देता भया शरीर को ममता रहित होकर के मरने को न वांछता अंतकाल में पंडित मरण को प्राप्त करूंगा ! वो दिन धन्य होगा ।

[इन तीनों मनोरथ को उत्तम श्रावक श्राविकाओं, मन वचन काया से शुभ परिणाम से भावता भया कई कर्म की निर्जरा करके संसार का अन्त करने वाले मोक्ष रूप उत्तम शाश्वत सुख को देने वाले संयम को ग्रहण करने की अभिलाषा वाले होते हैं और जब सद्गुरु का संयोग मिले तब कटि बद्ध होके उन्हीं की वैराग्य वाली देशना सुन कर यह संसार रूपी बेड़ी तोड़ के संयम का अङ्गिकार करते हैं]

सामायिक की विशिष्टता

(सामायिक राग द्वेष का अभाव या ज्ञान दर्शन-चारित्र का लाभ सामायिक)

आर्त और रौद्र ध्यान को त्याग कर सम्पूर्ण सावद्य (पाप मय) कार्यों से निवृत होना और एक मुहूर्त (४८ मीनिट) पर्यन्त मनोवृत्ति को समभाव में रखना, इसका नाम सामायिक व्रत है ।

(आत्महित के विचारों में तल्लीनता-रमणता का नाम है "सामायिक") सामायिक मन को स्थिर रखने की अपूर्व क्रिया है, आत्मिक अपूर्व शान्ति प्राप्त करने का संकल्प है, परम पद पाने का सरल और सुखद रास्ता है, पाप रूप कचरे को भस्मीभूत करने का यन्त्र है। अखण्डानन्द प्राप्त करने का गुप्त मन्त्र है, दुःख रूपी समुद्र से तरने का श्रेष्ठ जहाज है, और अनेक कर्मों से मलीन हुई आत्मा को परमात्मा बनाने का सामर्थ्य सामयिक–क्रिया में ही है। यह क्रिया करने से आत्मा में रहे हुए दुर्गुण नाश होकर सद्गुण प्राप्त होते हैं और परम शान्ति का अनुभव होता है। समायिक की महिमा बतलाते हुए परम तारक श्री तीर्थङ्कर देव फरमाते हैं अरबों खंडी सोने का दानी आत्म लाभ में शुद्ध सामायिक करने वाले की समानता नहीं कर सकता। 'लक्ष खंडी सोना तणी, लक्ष वर्ष देवे दान। एक सामायिक तुल्य नहीं, भाख्यो श्री भगवान।'

आज तक जो मोक्ष में गये हैं– जो जा रहे हैं और भविष्य में जो मोक्ष जायेंगे वह इस सामायिक का ही प्रभाव है।

समायक में श्रावक श्राविका अठारह पाप स्थानों के त्यागी होते हैं। साधु समान होते हैं। समायिक कभी भी कर सकते हैं। जितनी कर सकते हों उतनी करो। हमेशा कम से कम एक समायिक का नियम जरुर होना चाहिये।

समकित के पांच लक्षण

समकित के पांच लक्षणों को उपयोग में रखना चाहिए इसका किंचित खुलासा निम्नोक्त है:—

(१) सम अर्थात्—सर्व प्राणी मात्र के उपर सम भाव रखना अर्थात् अपने दुःश्मन पर भी अन्त करन से क्षमा रखना।

(२) सम्वेग अर्थात्-जन्म मरण से छूट कर अजर अमर अव्या बाध सुख है जहां, ऐसे मोक्ष प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा रखना तथा चित की वृति को निर्मल रखना।

(३) निर्वेद अर्थात्-संसार का भय यानी इस दुःख रूपी संसार से कब छूटुंगा। क्योंकि धन, स्त्री, पुत्र, स्वजन, सम्बन्धी यहां तक कि यह शरीर भी मेरा नहीं है। ऐसे दुःख देने वाले सम्बन्धों से कब छूटुंगा ऐसे विचार करना निर्वेद कहलाता है।

(४) अनुकम्पा—इसको करुणा भी कहते हैं और दया भी कहते है भावार्थ यह है कि किसी भी जीव को किसी प्रकार से दुःखी देख कर उसका दुःख दूर करने की चित में प्रबल इच्छा का होना अनुकम्पा है।

(५) आस्तिक्य, अर्थात् श्री वितराग के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा का होना आस्तिकता है। क्योंकि श्री वितराग

उसीको कहते हैं जिसके राग, द्वेष मोह सम्पूर्ण क्षय हो गये हैं। जिनके राग, द्वेष नष्ट हो गए उनको असत्य बोलने का कोई प्रयोजन नहीं रहा इसलिए सच्चे आप्त वे ही हैं। उनके वचन में शंका का नहीं होंना ही आस्तिकता है।

इन पांच लक्षणो से समकित के प्राप्ति की प्रतिति व्यवहार से अन्य लोगों को होती है। सो भव्य जीवों को इन गुणों के प्रगट करने में पूर्ण लक्ष (ध्यान) रखना चाहिए। इसका विशेष वर्णन सिद्धान्तों द्वारा गुरू गम से समझना चाहिये। यहां तो संक्षेप में दिखाया है।

काउत्सग्ग में नहीं करने लायक कृत्यों का संक्षिप्त बयान

हे चेतन् तू काऊसग्ग करता है जब कभी तू पैरों को हिलाता है। कभी हाथों को चंचलता वश कर देता है। कभी दृष्टि विपर्यास करते हुवे नजर आता है। कभी मस्तक को हस्ति की घुमत चाल माफिक घुमाता है कभी ओष्ट फुर्राते हुवे विज्ञात होता है और कभी जोर जोर से नवकार मन्त्र का जाप करते हुवे निकट वर्ति भव्यात्माओं कों बाधा पहुँचाता है। यहां तक कि शरीर के प्रत्येक अवयव को नियम भ्रष्ट कर क्रिया में प्रवृत होता है।

हे चेतन इस हास्यावस्था में उपसर्ग सहन का तो विचार ही क्यों ?

हे चेतन तू तो एक साधारण जन्तु मच्छर से भी

चलायमान हो जाता है। मगर भव्य आत्मार्थी लोग तो प्राणान्त कष्ट होने पर भी काऊसग्ग ध्यान से कदापि चलायमान नहीं होते हैं उन्हे धन्य है।

कायोत्सर्ग की सनिष्टता

हे आत्मा ! कई एक आत्मार्थी भव्यात्मा कायोत्सर्ग ऐसी उत्तम रिती से करते हैं कि कैसा भी उपसर्ग आजावे तो भी चलायमान नहीं होते हैं। जिस वक्त (आत्मार्थी भव्यात्मा) पर्यङ्कासन (पद्मासन) करते हैं उस समय दोनों हाथों को योग्य स्थिति से रखकर ठुड्डी को वक्षस्थल पर लगा कर तथा जिव्हा को तालु स्थान पर लगाकर दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करके ध्यानारूढ़ हो जाते हैं और काया से इस प्रकार विमुक्त हो जाते हैं कि नासिका के अग्रभाग पर सर्व शरीर को ध्यान में लाकर प्रथम ही प्रथम चरणों की तरफ से तत्पश्चात् जानु से, जङ्घा से, कटि से, कर कमलो से भुजाओं से हृदय से, वक्षस्थल से, कण्ठ से, मुख से, नेत्रों से, ललाट से, मस्तक से, और शिखा से, इस प्रकार अङ्ग के प्रत्येक अवयवों से, क्रमशः दृष्टि हटाते हुवे अन्त में अशरीरी हूँ ऐसा विचार करके आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं उस समय कितना ही भयङ्कर उपसर्ग आक्रमण करे तब भी आत्मार्थी भव्यात्मा बिल्कुल क्षोभित नहीं होते हैं।

(इस प्रकार का काउसग्ग आत्मार्थी भव्यात्माओं का होता है)

अरिहन्त प्रभु के काउसग्ग के समय

हे चेतन् ! परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी जिस वख़्त काउसग्ग ध्यान में खड़े थे उस समय कमठ तापस का जीव मेघमाली देवता ने घोर अंधकार कर मूसलाधार वृष्टि की यहां तक की बारह बारह कोस तक सर्व अटवी जलमय करदी और उन तीर्थङ्कर देव के नासिका तक जल पहुंच गया था मगर तब भी वे मनागपि क्षोभित न हुवे और शासनाधीश्वर श्री मन्महावीर परमात्मा को कायोत्सर्ग में शय्यापालक के जीवने कर्णों (कानो) में लोह के तीक्ष्ण किले पिरो दिये, गवालिये ने पैरों पर खीर पकाई, चण्ड-कोशिया नागने अपने फन का झपट मारा और भी संगमादि देवों ने नाना प्रकार के भयङ्कर उपसर्ग किये लेकिन वे जगद्गुरू कदापि चलायमान न हुवे इस प्रकार अनेक तीर्थङ्कर गणधर आचार्य, उपाध्याय और साधु जनों ने कायोत्सर्ग में स्थित रहकर अपनी आत्मा का कल्याण किया उन सर्व महान् आत्माओं को और उन महान् पूज्यों को यथा शक्ति अनुकरण करनेवाली वर्तमान सर्व महान् आत्माओं को और भविष्य में होनेवाली ऐसी महान् आत्माओं को मेरा त्रिकाल वंदन हो ।

(निद्रा का त्याग) 'इरियावहि के काउसग्ग की विधि-

(श्रावक प्रतिदिन पंच परमेष्टी-नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते हुए जाग्रत होंवे । जाग्रत होकर वस्त्र की शुद्धि करें) इरियावहि का काउसग्ग करने की इच्छावाला प्रथम तीन खमासणा (पंचांग प्रणाम) देकर खड़ा होकर 'इरयावही, तस्सउत्तरी, अन्नथउससिएणं बोलकर काउसग्ग में इरियावही के १८२४१२० मिच्छामि दुक्कृत का चिन्तवन करें । यह नहीं आता हो तो एक लोगस्स अथवा चार नवकार का काउसग्ग करें फिर नमस्कार पूर्वक कायोत्सर्ग पारके प्रगट लोगस्स कहे । (यह इरियावही का काउसग्ग समायिक नहीं करने वाला भी कर सकता है) (समायिक अवश्य करनी चाहिये) समायिक करने वाले के समायिक में यह काउसग्ग आ जाता है, और चेत्य वंदन करने के पहिले भी यह काउसग्ग करना चाहिए ।
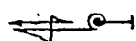
'कुसुमिण दुसुमिण राई प्रायच्छित' के काउसग्ग की विधि

यह 'कुसुमिन का काउसग्ग' पहिले 'इरियावहि' के काउसग्ग की विधि में लिखे अनुसार इरियावहि का काउसग्ग पूरा करके खमासणा देय कर—

इच्छाकारेणं संदिसह भगवन् । कुसुमिण दुसुमिण (उड्डावणि) राइय पायच्छित विसोहणत्थं काउसग्ग करूं ! "इच्छं" कुसुमिण दुसुमिण (उड्डावणि) राइ पायच्छित विसोहणत्थं करेमि काउसग्ग ऐसा कहकर अन्नथ उससिएणं कहकर काउसग्ग में सोलह नवकार का काउसग्ग करके नमो अरिहन्ताणं कहके (काउसग्ग) पारके प्रगट लोगस बोलना । यह काउसग्ग जरूर करना चाहिये क्यों कि रात्रि में लगे हुवे पापों के प्रायच्छित निमित हैं यह काउसग्ग, प्रतिक्रमण नहीं करने वाला भी कर सकता है और चैत्यवंदन करने के बाद भी कर सकते हैं और चैत्य-वंदन के पहिले इरियावही के काउसग्ग के बाद भी यह करके चैत्यवंदन कर सकते हैं ।

(प्रतिक्रमण रोज करना चाहिये)

प्रभु दर्शन के समय का चिन्तवन

[जिन प्रतिमा के दर्शन करते हुए निम्न प्रकार से चिन्तन करना चाहिए]

१. (मुख) प्रभु प्रतिमा के मुखार बिन्द के दर्शन करते हुवे विचारणा कि हे चेतन ! यह कैसा सुन्दर और शान्त स्वभाव है, भव्य जीवों को आनन्द देने वाला है । जिस मुख से किसी के प्रति अर्णवाद, मृषावाद, हिंसाकारी

वचन, निन्दा का वचन बोले ही नहीं जाते। उसमें रही जिव्हा ने रस विषय का कभी सेवन ही नहीं किया परन्तु धर्म उपदेश देकर अनेक भव्य जीवों को जो संसार में भूले भटके हैं, उन्हे तारने में सामर्थ बने हैं, ऐसे मुख को धन्य हैं।

"ऐसा मेरा मुख जिस दिन बनेगा वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा।"

२. (नासिका) प्रभु प्रतिमा के नासिका के दर्शन करते हुवे विचारणा कि हे चेतन ! इस नासिका ने सुरभिगंध दुर्गंध रूप घ्यानेन्द्रियों के विषयों का कभी सेवन नहीं किया ! ऐसी नासिका को धन्य है।

"ऐसा मेरा नाक जिस दिन बनेगा वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा।"

३. (आंख) प्रभुप्रतिमा के चक्षु के दर्शन करते हुवे विचारणा कि हे चेतन ! यह चक्षु कैसे सुन्दर और शान्त (मुद्रा) स्वभाव है भव्य जीवों को आनन्द देने वाले हैं। प्रभु की इन आंखों ने पांच वर्ण रूपी विषयों का कभी सेवन नहीं किया। किसी भी स्त्री की तरफ काम विकर दृष्टि से देखा नहीं तथा वैसे ही कार्य की तरफ द्वेष दृष्टि से नहीं देखा है। मात्र वस्तु स्वभाव और कर्म की विचित्रता विचार कर समभाव में रहे हैं। ऐसी आंख को धन्य है।

"ऐसी मेरी आंख (नेत्र) जिस दिन बनेगी वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा।"

४. (कान) जिन प्रतिमा के कानों के दर्शन करते हुवे विचारणा कि हे चेतन ! इन कानों ने विचित्र राग रागिनीयों को सुन कर भी उनका सेवन नहीं किया, तथा प्रिय व अप्रिय जैसे भी शब्द कानों में पड़े उन्हें समभाव से सुने हैं। ऐसे कान को धन्य है।

"ऐसे कान मेरे जिस दिन बनेंगे वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा"

५. (शरीर) जिन प्रतिमा के शरीर के दर्शन करते हुवे विचारणा कि हे चेतन ! प्रभु के शरीर ने कभी भी जीव हिंसा तथा अदत्त गृहण किया नहीं, मगर शरीर से जीव रक्षा करते हुए ग्राम नु ग्राम विहार करके भव्य जीवों को संसार के दुःख से मुक्त किया है। तथा उग्र तप, जप और घोर परिषह उपसर्गों को इस शरीर से सहन करके आत्मिक खजाना रूपी केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त करके लोकालोक के स्वरूप का एक समय में अवलोकन करके कई जीवों को धर्मोपदेश देकर दुर्गति में जाने से बचाया है। अर्जुन माली जैसे घोर पापियों के पाप से मुक्त करवा कर सिद्ध सुखों की प्राप्ति करवाई है। ऐसे शरीर को धन्य है।

हे चेतन तू जिस दिन प्रभु के माफिक निग्रन्थ मार्ग

अंगीकार करेगा वह दिन तेरे लिए परम कल्याण का दिन होगा।

इस प्रकार प्रभु की प्रतिमा को देख कर (दर्शन कर) प्रभु के साक्षात् गुणों को याद करें। प्रभु के गुणों का ध्यान करने से जीव पाप रहित होकर आत्मश्रेय जल्दी प्राप्त कर सकता है।

हे प्रभु ! परायों के दोषों को बोलकर मैंने अपने मुख को मलीन किया है। पर नारियों को देखकर मैंने अपनी आंखों को निंदित किया है। दूसरों का अशुभ चिन्तवन करके अपने चित को दोषित किया है। हे प्रभु ! मेरा क्या होगा ? चालक होकर भी बहुत चुका हूँ। जिसका पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! उस दृष्टि को धन्य है जिसने निर्मल दृष्टि से हमेशा आपके और निग्रन्थ गुरू महाराजों के दर्शन किए उस दृष्टि को धन्य है। उस जिह्वा को धन्य है जिसने जगद्वत्सल हे परमात्मा ! आपका स्वतन किया। उस कर्ण को धन्य है जिसने आपके बचनामृत का रस आनन्द से पिया। और उस हृदय को भी धन्य है जिसने आपके नाम रूपी निर्मल मन्त्र को सदा हृदय में धारण किया।

प्रभु दर्शन व पूजन करते समय का चिन्तवन

प्रभु के दर्शन करते समय मौन (काउसग्ग में) खड़े होकर निम्नोक्त चिन्तवन करें, तथा प्रभु की नव अंग पूजा करते समय भी निम्नोक्त भावना से चिन्तवन करें।

(१) अंगूठे की पूजा करते समय—हे देवादिदेव! आपने पृथ्वी पर विचरण किया, आपके चरण कमलों के प्रताप से कई भव्य प्राणियों का उद्धार हुआ। आपके चरण कमलों की सेवा बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। जैसे श्री ऋषभदेव प्रभु के चरणों को युगलिक मनुष्यों ने कमल के पत्तों में जल लाकर पूजा था। यदि मुझे इस संसार में फिर से जन्म लेना पड़े तो हर भव में आपके पावन कारी चरण कमलों की सेवा प्राप्त हो। यही मेरे मन की भावना है।

(२) गोडे (घुटनों) की पूजा करते समयः—हे परम कृपालू! जैसे आपने (जानु) जांघ के बल से काउसग्ग किया, दूर दूर के देशों-प्रदेशों में विचरण करते हुए कई प्रकार के उपसर्गों व कष्टों को सहन किया और खड़े खड़े केवल-ज्ञान, त्रिकाल-ज्ञान प्राप्त किया, उसी प्रकार मैं भी (आपकी जानु पूजा से) मजबूत जानु वाला बनकर कर्म दल का नाश करके केवली बनू। यही मेरी भावना है।

(३) कर कांडे (हाथ) की पूजा करते समय—हे

प्रभु ! लोकान्तिक देवों की विनती से बारह मास तक लोगों को इच्छित दान देकर, जगत का उपकार करते हुए आपने हाथों का लाहवा लिया। फिर सर्वस्व त्यागी साधु बने। (आपके हाथों की पूजा करके) मैं भी आपके जैसा दानी बनू, यही मेरी भावना है।

(४) कंधे (स्कन्ध) की पूजा करते समय–हे दया सिन्धु ! आपने बाह्य (बाहरके) और अभ्यन्तर (अन्दर के) मान–अभिमान को जीत कर अनन्त बलवीर्य प्राप्त किया। बलवान भुज्जा बल से भव सागर को पार किया ! (आपकी भुज्जाओं का पूजन कर) मैं भी संसार रूपी भव सागर को पार करू । यही मेरी भावना है !

(५) मस्तक (शिखाचोटी) की पूजा करते समय– हे देवादिदेव ! लोक के अन्त में जो निर्मल सिद्ध शिला है, उसके ऊपर आप विराजमान हैं। भव्य आत्माएँ आपके सिर पर शोभित शिखा चोटी की पूजा करती हैं। उसी प्रकार मैं भी आपकी शिखा चोटी का पूजन कर सिद्ध शिला पर रहने वाला बनूं। यही मेरी भावना है !

(६) ललाट (भाल) की पूजा करते समय–हे तीर्थङ्कर प्रभु ! आपने सत्य धर्म की सच्ची आराधना करके बड़े पुण्योदय से सर्व श्रेष्ठ श्री तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया है। इसी कारण तीनों भुवनों के लोक आदर

पूर्वक आपकी सेवा करते हैं। तीनों भुवनों में आप तिलक समान पूज्य हैं। आपकी आज्ञा मानने वाला, आपके तिलक करने वाला आपके चरणों में नमन करने वाला महानुभाव जगत में पूज्य बनता है। मैं भी आपकी आज्ञा सिरोधारण करूं यही मेरी भावना है।

(७) कंठ (गला) की पूजा करते समय—हे कृपानाथ! आपने संसार के प्राणियों के हित के लिए धर्मोपदेश का उपदेश देकर अतुल मधुरकंठ की सफलता प्राप्त की, आपकी समधुर देसना को देव, मनुष्य और पशु पक्षियों गे सुनकर सफलता प्राप्त की। मैं भी आपके कंठ की पूजा करके मधुर क़ंठी बनू। यही मेरी भावना है।

(८) हृदय कमल की पूजा करते समय—हे विश्व वन्धु! आपने हृदय प्रेम से राग द्वेष को जला दिया (जिस प्रकार हिम की लहर वन को जला देती है) आपके हृदय में समता भाव पूर्ण विश्व वात्सल्य का भर पूर श्रोत है। आपकी हृदय पूजा करके मेरे हृदय में (आपके प्रभाव से) सच्चे ज्ञान और धर्म की ज्योति जगमगाए यही मेरी भावना है।

(९) नाभि कमल की पूजा करते समय—हे वीतराग महाप्रभू! सम्यगदर्शन, ज्ञान एवं चरित्र रूपी उज्जवल रत्नत्रयी आदि सभी सद्‌गुणों के आप केन्द्र स्थान हैं। आपकी पूजा करके मैं भी (आपके प्रभाव से) रत्नत्रयी का

आराधक बनकर मोक्ष स्थान प्राप्त करूं। यही मेरी भावना है।

(१०) नव अंग की पूजा करने के पश्चात् प्रभुजी के सम्मुख खड़े होकर चिन्तवरण करें—हे तारकनाथ ! आपने देव रचित समवशरण में विराजमान होकर बारह पर्षदा के आगे जीवादि नवतत्व स्वरूपी धर्म का उपदेश दिया। मैं भी आपके नव अंगों की पूजा करके (आपके प्रभाव से) नव तत्व का सम्यग ज्ञान प्राप्त करके आपके समान बनूं। यही मेरे आन्तरिक दिल की भावना है।

"पूजा से पूज्य बराबर धार" इन शास्त्र वचनों में मेरी पूर्ण श्रद्धा है। [पूजा नहीं करें तब भी प्रभु के अङ्गों के दर्शन करते हुए भावना भावें]।
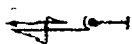
श्री ऋषभ देवाय नमः

त्रैलोक्य आर्ति हर नाथ, तुझे नमु मैं। हे भूमि के विनय रत्न, तुझे नमु मैं। हे ईश सर्व जगत के, तुझे नमु मैं। मेरे भवो दधिनाश का, तुझे नमु मैं।

हे नाथ ! तीनों लोको की पीड़ा को हरने वाले आपको नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी के निर्मल भूषण रूप आपको नमस्कार करता हूँ, जगत त्रय के परमेश्वर अर्थात् स्वामी आपको नमस्कार करता हूं। हे जिन ! संसार व जन्म रूपी

समुन्द्र को सुखाने अर्थात् भव बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले आपको नमस्कार करता हूं।

देवाधि देव अरिहन्त भगवन् आपने स्वर्ग, मृत्यु, और पाताल तीनों जगत में धर्म का उद्योत किया है और धर्म तीर्थ की स्थापना की है। राग द्वेष आदि अन्तरङ्ग शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। ऐसे चौबीसों केवल ज्ञानी तीर्थ-ङ्करों को मैं नमस्कार करता हूं।

हे सर्वज्ञ नाथ आप कर्म मल से रहित है। जरा-मरण दोनों से मुक्त है और तीर्थ के प्रवर्त्तक है। ऐसे चौबीसों जिनेश्वर की मुझ पर कृपा हो। आपके आलम्बन से मुझे प्रसन्नता मिले।

सिद्धों की स्तुति

जो लोक में उत्तम, प्रधान और सिद्ध है, जिनका कीर्तन, वन्दन, पूजन नरेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों ने किया हैं और उन्होंने सिद्धि को प्राप्त किया है। वे भगवन् मुझको आरोग्य, सम्यकत्त्व तथा समाधि का श्रेष्ठ वर देवें। उनके आलम्बन से बल पाकर मैं आरोग्य आदि का लाभ हासिल करूं।

सिद्ध भगवान जो सब चन्द्रों से विशेष निर्मल है सब सूर्यों से विशेष प्रकाशमान है और स्वयंम् भुरमण नामक महा समुन्द्र के समान गम्भीर है उनके आवलम्बन से मुझे भी सिद्धि व मोक्ष प्राप्त हो।

ऐसे अनेकानेक शुद्ध आत्मिक गुणों से स्मृध भगवान को मेरा त्रिकाल, त्रिकरण, त्रियोग की शुद्धि पूर्वक नमस्कार हो।

जो सिद्ध अर्थात मुक्त हो चुके हैं, जो भविष्य में मुक्त होने वाले हैं तथा वर्तमान में मुक्त हो रहे हैं उन सब त्रिकालिक सिद्धों को मैं मन, वचन, काया और शरीर से बन्दना करता हूँ।

॥ श्री अरिहन्ताय नमः ॥

श्री तीर्थंकर, केवली और साधुओं की स्तुती

सारी कर्म भूमियों—पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह में विचरते हुए तीर्थङ्कर अधिक से अधिक १७० पाए जाते हैं। वे सब प्रथम संहनन वाले ही होते हैं। सामान्य केवली उत्कृष्ठ नव करोड़ और साधु उत्कृष्ठ नव हजार करोड़ (९० अरब) पाये जाते हैं। परन्तु वर्तमान समय में उन सब की संख्या जघन्य है, इसलिए तीर्थङ्कर सिर्फ २० केवल ज्ञानी मुनी दो करोड़ और अन्य साधु दो हजार करोड़ (२० अरब) हैं। इन सबको मैं (हमेशा प्रातःकाल) पंच अङ्गनमा कर (हाथ जोड़ कर शीश झुकाकर) नमस्कार (बन्दना) करता हूं।

(श्री महावीर स्तुति)

मिथ्यामत अथवा वहीरात्म रूपी अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य समान, संसार रूपी समुन्द्र के जल को पार करने के लिए नौका समान, और राग रूपी पराग को उड़ाकर फैंकने के लिए वायु समान। ऐसे श्री महावीर भगवान् को मैं हाथ जोड़, शीश झुकाकर नमन करता हूँ।

जल जिस प्रकार दवानल के सन्ताप को शान्त करता है। उसी प्रकार भगवान संसार के सन्ताप को शान्त करते हैं, हवा जिस प्रकार धूलि को उड़ा देती है उसी प्रकार भगवान मोह को नष्ट कर देते हैं, जिस तरह पैना हल पृथ्वी को खोद डालता है उसी प्रकार भगवान माया को उखाड़ फेंकते हैं और जिस प्रकार समेरू चलित नहीं होता उसी प्रकार अति धीरज के कारण भगवान भी चलित नहीं होते ऐसे श्री भगवान महावीर स्वामी को सर झुकाकर वन्दना करता हूं।

जो कर्म-बैरियों के साथ लड़ते लड़ते अन्त में उनको जीतकर मोक्ष को प्राप्त किया है, तथा जिनका स्वरूप मिथ्यामतियों के लिए अगम्य है, ऐसे प्रभु श्री महावीर को मैं नमस्कार करता हूं।
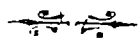
सर्व साधुओं की स्तुति

भरत एरावत और महाविदेह क्षेत्र में जो तीन दण्ड से त्रिकरण पूर्वक अलग हुवे हैं अर्थात् मन वचन और काया के अशुभ व्यापार को न स्वयम् करते हैं, न दूसरों से करवाते हैं और न किसी को करते हुए अच्छा समझते हैं। उन सब साधुओं को मैं शीश झुकाकर वन्दना करता हूं।

जैन शास्त्र (आगम सूत्र) की स्तुति

[आगम स्तुति] सन्देह पैदा करने वाले एकांतवाद के शास्त्रों के परिचय से उत्पन्न भ्रम रूपी जटिल कीचड़ जिसे दूर करने के लिए निर्मल जल प्रवाह के सद्रस को तथा संसार समुन्द्रसे पार होने के लिए प्रचण्ड नौका के समान परम सिद्धि दायक महावीर सिद्धान्त की। अर्थात् अनेकान्तवाद को मैं नमन करता हूँ।

[आगम स्तुति] जैसे समुन्द्र गहरा होता है वैसे ही जैनागम भी अपरिमित ज्ञान वाला होने के कारण गहरा है। जल की प्रचुरता के कारण जिस प्रकार समुन्द्र सुहावना लगता है, वैसे ही ललित पदों की रचना से आगम भी सुहावना है जैसे लगातार बड़ी बड़ी तरङ्गों

होने के कारण आगम में भी प्रवेश करना अति कठिन है। जैसे समुन्द्र में बड़े बड़े तट होते हैं, वैसे ही आगम में भी बड़े बड़े उतर-तन्त्र (चलिकाएं) हैं। जिस प्रकार समुन्द्र में मोती, मूंगे श्रेष्ठ वस्तुएं होती हैं, वैसे ही आगम में भी बड़े बड़े उत्तम गम-आलावे (सदृश पाठ) होते हैं। जिस प्रकार समुन्द्र का छोर (किनारा) बहुत ही दूरवर्ती होता है, वैसे ही आगम का पार पूर्ण मर्म रिति समझना दूर (अति मुश्किल) है। ऐसे आगम की मैं आदर तथा विधि-सेवा करता हूँ।

समुन्द्र के समान विशाल जैन शास्त्र (भगवान महावीर की वाणी) को मैं हाथ जोड़ कर, शीश नवाकर नमस्कार पूर्वक करता हूं।

[आगम स्तुति] भगवान की वाणी जेष्ठ मास की मेघ–वर्षा के समान अति शीतल है, अर्थात् जैसे जेष्ठ मास की वृष्टि ताप पीड़ित लोगों को शीतलता पहुंचाती है वैसे ही भगवान् की वाणी कषाय पीड़ित प्राणियों को शान्ति

वह श्रुत विशाल है अतएव बारह अङ्गों में विभक्त है। वह अनेक अर्थों से युक्त होने के कारण अद्भुत है अतएव इसको बुद्धिमान मुनि पुंगवो ने धारण कर रखा है। वह सब पदार्थों को प्रदीप के समान प्रकाशित करता है अतएव वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अद्वितीय सारभूत है। ऐसे जैन आगम को हाथ जोड़ कर नमन करता हूं।

ॐ अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु मुनिराज, इन पांच परमेष्ठिओं को मैं अन्य सब कार्य छोड़ कर शक्ति के अनुसार हाथ जोड़, शीश नवाकर वन्दना करता हूं।

हे तरण तारण जिनेश्वर आपकी परम कृपा से मुझे ऐसी शक्ति मिले कि जिस तरह म्यान से तलवार अलग की जाती है, उसी प्रकार मैं अन्नत शक्तिशाली, निर्दोष, शुद्ध वीतराग आत्मा को नश्वर शरीर से अलग कर दूं।

हे प्रभु सर्व जीवों के नायक जगतपति परमेश्वर। मैंने पराये जीवों की पीड़ा को नहीं पहचाना, मतलब से या बिना मतलब से प्रमाद पूर्वक अनेक तरह मन, वचन काया से एगिंदिया, बेइंदिया तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, संख्याता, असंख्याता जीवों का मुझसे संहार हुआ, उन्हें दुख व पीड़ा पहुंची। हे प्रभु इन सबके लिए मैं आपको साक्षी रखकर अपनी आत्मा, मन, वचन काया को वारंवार धिक्कारता हूं।

हे प्रभु समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुख, सुख, वैरी अथवा बन्धु समूह में इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, गृह और बन में हर समय राग द्वेष रहित समान रूप से रहे।

हे मुनिनाथ ! अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले मेरे अज्ञान को नाश कीजिये।

हे प्रभु मैं मोक्षमार्ग के विपरीत चलने वाला हूँ, दुर्बुद्धि हूं। चार कषाय पांच इन्द्रियों के वश होकर मैंने जो भी चारित्र की निर्मलता का विनाश किया है, उस दुष्कृत्य का नाश करो।

संसार के दुःखों के कारण जो भी पाप मैंने मन, वचन, काया और कषायों से किये हैं, उन सबको मैं अपनी निन्दा, आलोचना और घृणा करके इस प्रकार नष्ट करना चाहता हूं, जिस प्रकार वैध विष को मन्त्र के गुणों से दूर करता है।

हे जिन देव मैंने दुर्बुद्धि से प्रमाद वश होकर अपने उत्तम चरित्र में जो अतिक्रम (अयोग्य वस्तु की इच्छा करना) व्यतिक्रम (उसके लिए गमन करना) अतिचार (उसको ग्रहण करना) और अनाचारादिक दोष किये हैं। उनकी शुद्धता के लिए मैं पश्चाताप करता हूं। मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों।

प्रभु प्रार्थना

हे प्रभु तरण तारण जिनेश्वर भगवान् ! मेरी उद्दण्डता दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयों की मृगतृष्णा को शान्त कर दीजिए, प्राणियों के प्रति मेरा दयाभाव बढ़ाइये और इस संसार समुद्र से मुझे पार लगाइये ।

हे प्रभु मैंने हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कर्ण, नेत्र, अथवा मन से जो भी अपराध किये हैं वे विहित हो अथवा अविहित हो उन सबको क्षमा कीजिये ।

हे परम कृपालु ! मेरा न करने योग्य कार्यों का करना और करने योग्य का न करना आप क्षमा कीजिये ।

हे देवादिदेव ! आप मुझे ऐसी शक्ति और बुद्धि दीजिये जिसकी मदद से मैं अपनी आंखों में, मनमें तथा वचन में आपके दर्शन कर सकूं ।

हे करुणा सागर ! मेरे में न विवेक है न वैराग्य और न शाम दाम आदि ज्ञान के अन्य छः साधन ही हैं इसलिए हे तीन लोक के नाथ, भव भय भंजन भगवान् अष्ठीनाथ सर्वेसर्वा मुझको विवेक दीजिये और मेरा कल्याण कीजिए।

हे अभिष्ट वर दायक स्वामीन्, हे जगदीश, हे सुमतियों के स्वामी, हे विश्वेश हे सर्व व्यापित्, हे परमेश्वर, हे परम पुरुषोतम, हे परम पावन हे कल्यान मय, हे जीवों का

निस्तार करनेवाले, हे मोक्ष स्वरूप, निराकार कृपालु गुणों के धाम संसार परे परमेश्वर, आपको मैं हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमस्कार करता हूं।

हे श्रेष्ठ तेजस्वी परमेश्वर अखण्ड अजन्मा करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले सर्व दुःखों को निर्मुल करने वाले सच्चिदानंद धन श्री सिद्ध परमात्मा आपको मैं नमस्कार करता हूँ आपके आलम्बन से मुझको सिद्धि मोक्ष प्राप्त हो।

हे दीनानाथ ! मैं अपार भव सागर में पड़ा हुवा हूँ, महान दुःखों से भयभीत हूं, कामी लोभी मतवाला तथा घृणा योग्य संसार के वन्धनों में बन्धा हुवा हूँ। हे प्रभु आप समर्थ नायक हो कृपा करके मुझे संसार के वन्धनों से छुड़ाकर जन्म मरण से मुक्त कीजिये।

हे भगवान भक्ती और वर्त का भी मुझे ज्ञान नहीं है, हे प्रभु केवल आपका ही सहारा है, हे शरण्ये सर्व शक्तीमान प्रभु, आप, विषाद प्रमाद, परदेस, जल अनल पर्वत वन, तथा शत्रुओं के मध्य में सदा ही मेरी रक्षा करना।

हे प्रभु दुःख दालिद्र को नाश कीजिये, अज्ञानता के अंधकार को मिटाइये सदज्ञान का प्रकाश कीजिये, पांच इन्द्रियों के जरीये किये हुये पापों का नाश कीजिए उदय में आये हुये पापों को नष्ट कीजिये सर्व जीवों को सुखी कीजिए।

श्री शान्ति नाथाय नमः

श्री शान्तिनाथजी की भाषामय स्तुति

(१) हे देवों के देव जगत के रक्षक, परमात्मा श्रीमान् सोलवे तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ भगवान् मैं आपको नमस्कार करता हूं (हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमन करो)

(२) हे शान्तिनाथ भगवान् हे भव समुद्र तारक, सर्वार्थ सिद्धि मन्त्र स्वरूप, आपके नाम को नमस्कार हो।

(३) हे शान्तिनाथ भगवान् आप चौतीस अतिशय रूपी महा सम्पति से युक्त हैं और त्रिभुवन पुजित है आपको मैं नमस्कार करता हूं।

(४) हे परमेश्वर हे पुरुषोतम शान्ति नाथ भगवन् आपकी जो अष्ट विध पूजा करते हैं वे अष्ट अनिमादि सिद्धियों को प्राप्त करते हैं।

(५) हे देवादिदेव शान्तिनाथ भगवन् आपको नेत्रों से जो सदा देखते हैं उनके नेत्रों को धन्य है। जो नेत्रों से देख कर आपको हृदय में धारण करते हैं उनका हृदय नेत्रों से धन्य है।

(६) जैसे पारस के स्पर्श से लोह कंचन होता है उसी तरह प्रभु शान्तिनाथजी के चरण स्पर्श करने वाले जन पवित्र होते हैं।

(७) जैसे सूर्य के स्पर्श-मात्र से अति निबिड़ अन्धकार समूह शीघ्र ही नष्ट होता है उसी तरह श्री शान्तिनाथजी

के गुण-कीर्तन स्तुति-से दुःश्मन, हाथी, सिंह, प्यास, गरमी, पानी, चोर, आधि, व्याधि, संग्राम, डमर, मारी, और व्यन्तरादि के भयंकर उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

(८) जैसे सूर्य के उदय से अंधकार और निद्रा नष्ट हो जाती है वैसे ही श्री शान्तिनाथजी के ध्यान से मोह और मिथ्यात्व का नाश हो जाता है।

(९) जिनकी माता का नाम अचिराजी और पिता का नाम राजा विश्वसेन जी है। खुद पांचवें चक्रवर्ती राजा और सोलहवें जिन देव है। श्री शान्तिनाथ भगवान् सबको मंगल प्रदान करो।

श्री पार्श्वनाथय नमः

हे महायशस्विन् ! हे महा भाग ! हे चिन्तित शुभफल के दायक ! हे समस्त तत्वों के जानकार ! हे श्रेष्ट गौरवान्वित गुरो। हे दुःखित जीवों के रक्षक। तेरी जय हो बार बार जय हो भव्य जीवों के भयानक संसार सम्बन्धी भय को हटाने वाले अनन्त गुणों के धारक प्रभु पार्श्वनाथ। आपको तीनों संध्याओं के समय आपके चरणों में नमस्कार करता हूं।

हे विश्व वत्सल तरण तारण प्रभु पार्श्वनाथ भगवन् ! जगत में आपकी महीमा अद्भुत है।

हे भगवन । हमारे जन्म मरण के फेरे टालकर अखण्ड सुख शान्ति वाला शिव सुख हमें प्रदान किजीए हमारे कष्टों का निवारण किजीये ।

हे पार्श्व प्रभु । आप ही सब से अधिक महिमा वाले सिद्ध हुए हैं । आप अनन्त शक्तियों के स्वामी एवं समर्थ नायक होते हुवे भी शत्रु पर दया दृष्टी रखकर उन्हें भव सागर से पार किया है । कमठ की शत्रुता का विचार न करते हुवे उस उपसर्ग करने वाले कमठ को आपने क्या क्या प्रदान नहीं किया ? शत्रु भाव से मिलने पर भी कमठ ने आपके दर्शन मात्र से क्या समकित रत्न नहीं प्राप्त कर लिया ।

हे प्रकट महिमा वाले आपका वंदन पूजन और किर्तन करने से संसार में प्राणियों को क्या क्या प्राप्त नहीं हो जाता ? यदि प्राणी एक भी नमस्कार श्रद्धा भक्ति और भाव पूर्वक करता रहे तो इस लोक के इच्छित पदार्थों के अतिरिक्त वह परम्परा से संसार के पार उत्तर सकता है ।

हे पार्श्व प्रभु आप भक्त जनो को मांगलिक और कल्याण की परम्परा प्रदान करने वाले हैं और मिथ्या स्वरूप विष को दूर करने वाले हैं ।

आरिहन्त परमात्मा प्रभु पार्श्वनाथ भगवान् का मैं जावज्जीव अर्थात् मुक्त न होऊ तब तक शरण लेता हूँ । श्री पार्श्व प्रभु मुझे जावज्जीव शरण दो ।

हे आदेय नाम कर्म वाले विश्ववत्सल प्रभु पार्श्वनाथ भगवान् ! आपके स्वरूप को समझने वाले पुरुष ही संसार में धन्य हैं । आपकी शक्ति समझने वाले ही आपकी भक्ति कर सकते हैं आपके नाम रूपी मन्त्र शक्ति से ही प्राणियों के घोर पाप नष्ट हो जाते हैं । जो जीव आपके नाम रूपी मन्त्र का बारम्बार स्मरण करते हैं वे ही जगत में भाग्य शाली हैं । उनके सब प्रकार के रोग, शोक, दुष्ट ग्रह एवं समस्त आदि व्याधि नष्ट हो जाते हैं और मनो वांच्छित फल प्राप्त कर लेते हैं ।

देवादि देव तरण तारण पार्श्व प्रभुजी आपके सम्यक्त्व की तो बात ही अद्भुत है । आपका सम्यक दर्शन, देव गुरू और धर्म की भक्ति एवं श्रद्धा तो चिन्तामणी रत्न एवं कल्प वृक्ष से भी अधिक महीमावन्त है । जिस पुरुष ने उसे प्राप्त कर लिया उसका बेड़ा तो पार ही हुवा समझना चाहिये क्योंकि चिन्तामणी रत्न और कल्प वृक्ष तो केवल इसी जन्म में सुख दे सकते हैं । अर्थात् परलोक सम्बन्धि फल देने की उनमें कोई शक्ति नहीं है । जबकि आपके समकित रत्न की प्राप्ति से तो जीव इस लोक में सुख सामग्री प्राप्त करने के अतिरिक्त परलोक में भी अत्यन्त आश्चर्यकारी इन्द्र उपेन्द्रादि पदवियां और परम्परा से तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है । इस प्रकार आपके समकित रत्न प्राप्त करने वालों की कहां

तक प्रशंसा की जाय। दुर्गति में जाने वाले उस नाग को भी मरते समय दर्शन देकर नागेन्द्र (धरनेन्द्र) बना दिया, आपकी उस शक्ति, माहत्मय और प्रभाव का हम कैसे वर्णन कर सकते हैं।

श्री महावीराय नमः

तरण तारण जिनेश्वर अरिहन्त परमात्मा श्रीमहावीर स्वामी आपके चरणारविंद में नमस्कार करता हूँ।

हे महावीर प्रभु! आप अनाथों के नाथ अशरण के शरण और दीनदुःखियों के बन्धु हैं। आपकी कृपा से अनन्त जीवों का कल्याण हुवा है। पतित से पतित भी आपके चरणों में आ गया तो आपने उसे पावन कर दिया है। मैं घोरातिघोर पाप करके आपके निकट आया हूं। उन पापों का वर्णन नहीं किया जा सकता लेकिन अब आप चाहें तो मेरा उद्धार हो सकता है।

मेरी आशा का केन्द्र एक मात्र आप हैं मैं आपकी शरण में हूं। शरणागत की अपेक्षा मत कीजिये, अगर उपेक्षा हो गई तो वह लाज कैसे रहेगी। पतित की पत जाने पर पतित पावन को भी तो सह्य नहीं होगा।

मानता हूं कि मैंने अति कठोर कर्म बांधे हैं और उन की वजह से बार बार जन्म मरण ले रहा हूँ, लेकिन

अब आपकी शरण में आ पहुंचा हूँ तो दया निधि मेरा उद्धार कीजिये।

मेरा सौभाग्य था जो मुझे आपके निकट खींच लाया। आपकी मेहर नजर मात्र से मेरा दुःख दूर हो गया और पुण्य प्रकाश मिल गया है। अब दया करके मुझे बोधी दान दे दीजिये ताकि मैं भव-भव में आपकी भक्ति भावना पा सकूं।
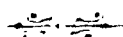
परमात्मा महावीर का गुण

(स्तुती) प्रभु महावीर परमात्मा परम योगीश्वर ने आज से पचीस सौ वर्ष पहले इस भारतवर्ष को अपने चरण कमल से पवित्र कर रहे थे। वे अहिंसा के तो पिता ही थे। उनका ऐश्वर्य, परमात्मत्व, बल और प्रभुता सब परोपकार के लिए ही थे परावार पराक्रम होने पर भी क्षमा के सागर थे। लोकालोक के तीनों काल के भावों को एक समय में देखने वाले थे। त्रिभुवन का साम्राज्य होने पर भी केवल निर्मोह और निराभिमान थे। दातार में शिरोमणी, सहिष्णुता में असाधारण, जितेन्द्रिय में महान्, अपराधियों के ऊपर उपकार करने वाले थे। जगत के जीवों का कल्याण कैसे हो ? सर्व जीव पाप से मुक्त कैसे हों ? अविनाशि सुख प्राप्त करने के लिए तत्व रसिक कैसे बने ? इनका इसी पर

अर्हनिश लक्ष्य बिंदु था। धीरता में, वीरता में, तीन लोक में समर्थ थे। उनका चारित्र्य आलौकिक था। संयमबल-आत्मबल अवर्णनीय था। जिसके प्रभाव से करोड़ों देवता उनकी सेवा में हाजिर रहकर, उनके चरणों में लोटते थे। उनके प्रभाव से परस्पर बैर भाव वाले जीव भी परस्पर बैरभाव भूलकर मित्र भाव से रहते थे जीव मात्र को त्रास देने वाली जड़ वस्तुएं भी अपने स्वभाव भूल जाती थी स्वर्ण चांदी और रत्नादिक से रचित समवसरण में बैठकर देसना देने पर भी निःस्पृह और निर्मोह थे। ऐसे परोपकारी प्रभु के लक्षांश में भी समानता करने वाला कोई भी व्यक्ति अब तक पैदा हुआ नहीं और भविष्य में भी यह कलीकाल रूपी पांचवें आरे में पैदा नहीं होगा। ऐसा अत्यंत चमत्कारिक तथा अतिशयों से अलंकृत अद्भुत जीवन और जगत के जीवों के पापों को भस्म करने में समर्थ महान् पुण्य के पुंज परमात्मा महावीर देव ने अपने पिछले भव में असाधारण पवित्र जीवन बिता के महा दुष्कर तपस्या करके बड़ी पवित्रता प्राप्त की थी। परमात्मा महावीर देव अपने पचीस में भव में नंदन ऋषि भये। उस समय संयम ग्रहण करके यावज्जीव ग्यारह लाख अस्सी हजार छः सौ पैंतालीस मास खमरण करके तीर्थङ्कर नाम कर्म निकाचित करके छब्बीसवें भव में दशवें देवलोक के सुख का अनुभव करके सत्ताईसवें भव में परमात्मा का पद प्राप्त करके अमृत से

भी मधुर धर्म देसना देकर जगत के जीवों को दुर्गति में जाने से बचाया ।

सरोवर के पास जाने पर भी तृषा शान्त न हो, लक्ष्मीवान् के पास जाने पर भी दरिद्रता न मिटे। तो सरोवर अक्ष्मीवान् की शोभा ही क्या है? आपके जैसे त्रिभुवन नायक शिर छत्र होने पर भी हम कंगाल रहे और आप अनंत सुख के भोक्ता और परम योगीश्वर हो उसमें आपकी शोभा क्या है? हम तो पंगु होकर मेरु पर्वत के ऊपर चढ़ने की इच्छा और निर्भागी होकर राज्य प्राप्ति करने का हमारा लोभ और बिना योग्यता से दुष्प्राप्त वस्तु मांगने की बेशर्म याचना से भले ही हास्यास्पद गिने जायें परन्तु मेघ जब वृष्टि करता तो भला ऊंच नीच स्थान कब देखता है परोपकारी पात्रापात्र की मांग करते नहीं तो फिर आपके जैसा त्रिभुवन नायक दाता शिरोमणि मिलने पर भी हम असंतुष्ट रहे यह कैसे बन सकता? कदापि न बने, हम बिना लिए छोड़ेंगे नहीं अब आपके बिना इन तीनों लोक में हमारा दारिद्र दूर करने वाला कोई नहीं है। इसलिए हे परमात्मा एक बार तो इस सेवक की तरफ दया की दृष्टि डालकर संसार रूपी समुन्द्र से शीघ्र मुक्ती दिलावें।

क्षमापना-प्रार्थना प्रभु से

हे भगवान ! मैं भटक गया हूँ। आपके अमूल्य वचन मैंने लक्ष्य में नहीं लिये। आपके कहे हुए अनुपम तत्व का मैंने विचार नहीं किया। आपके द्वारा प्ररूपित उत्तम शील का सेवन नहीं किया। आपके बताए हुए दया, शांति, क्षमा और पवित्रता के रहस्य को मैंने नहीं पहचाना।

हे भगवान ! में भूला भटका, मारा-मारा फिर रहा हूँ और अनन्त संसार की विडम्बना में पड़ा हूं। मैं पापी मंदोन्मत और कर्म रज से मलीन हूँ। हे परमात्मा ! आपके बताये तत्वज्ञान के बिना मेरा मोक्ष नहीं है। मैं निरन्तर प्रपंच में पड़ा हूं। अज्ञान से अंधा हो रहा हूँ, मुझ में विवेक शक्ति नहीं है, और मैं मूढ़ हूं। मैं निराश्रित हूं, अनाथ हूं।

निरागी परमात्मा ! अब मैं आपकी आपके धर्म की और आपके मुन्नियों की शरण लेता हूँ। मेरे अपराध क्षमा करो मैं सभी पापों से मुक्त हो जाऊं यही मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापों का मैं अब पश्चाताप करता हू। ज्यों ज्यों मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान होने लगता है, यही आपके ही तत्व ज्ञान का चमत्कार है। आप निरागी, निर्विकारी सच्चिदानन्द स्वरूप, सहजानन्दी, अनन्तज्ञानी, अनन्त दर्शी और त्रैलोक्य प्रकाशक हैं। मैं केवल अपने हित के लिए ही

आपकी साक्षी से अपने अपराधों की क्षमा चाहता हूं। एक पल भी आपके कहे हुए मार्ग पर मैं अहोरात्र निष्टावान रहूं यही मेरी आकांक्षा और वृति हो।

हे सर्वज्ञ भगवान् मैं आपको अधिक क्या कहूं ? आपसे कुछ भी छुपा नहीं है। केवल पश्चाताप के द्वारा मैं कर्म-जन्य पापों की क्षमा चाहता हूं।

ॐ शान्तिः शान्तिः ॐ शान्तिः।

प्रभु के आगे खड़े खड़े बोल सकते हैं।

प्रार्थना (बोलते समय मस्तक पर अंजलि करके बोलें)

हे वीतराग प्रभु ! हे जगत के गुरु ! (आप) जयवंत वर्तो आपकी जय हो ! हे भगवन्त ! मुझे आपके प्रभाव से संसार से वैराग्यता, धर्म-मार्ग का अनुसरण और इष्ट फल की सिद्धि मिले ॥१॥

और लोक विरुद्ध कार्य का त्याग, सद्गुरु, माता-पितादि, पूजनीय जनों की सेवा-पूजा, उनका सम्मान, परोपकार में प्रवृति, श्रेष्ठ गुरु का समागम और उनके वचन का अखण्डित पालन—ये सब बातें हे भगवन् ! आपके प्रभाव से मुझे जन्म-जन्म में मिलें ॥२॥

हे वीत राग प्रभु ! मैं जब तक इस संसार में रहूं तब तक मुझे आपके चरण कमलों की सेवा का अवसर

भवोभव में मिलता रहे। यही मेरी आपसे प्रार्थना है ॥३॥

शारीरिक और मानसिक दुःख का नाश, आठ कर्मों का नास समाधि पूर्वक मृत्यु और सम्यकत्व की प्राप्ति हे नाथ इन चारों बोलों की प्राप्ति आपके प्रभाव से मुझे हो ॥४॥

सब मंगलिकों में मंगलिक, सब कल्याणभूत और सब धर्मों में श्रेष्ठ जैन धर्म का शासन जयवन्त है ॥५॥

प्रभु प्रार्थना

हे तरण तारण ! हे प्रभु ! अपने भक्तों को एक वार तो मिष्ठ दृष्टि से देखो, हमारे अपराधों को माफ करो, और हमारे हृदय रूपी शुद्ध सिहासन पर आप अरूढ़ हो जावो।

हे परमात्मा ! आपकी तरह हमें भी पवित्र संयम राग, योग, बल और समभाव की प्राप्ति हो।

हम जब तक इस संसार में रहें तब तक हमें आपके चरण कमलों की सेवा का अवसर भवोभव में मिलता रहे। आपके चरण कमलों की सेवा से ही हम अपनी आत्मा को उच्च कोटि प्राप्त कराकर भाग्यशाली बनेंगे।

हे प्रमात्मा ! नम्रता, सरलता, भद्रकता, क्षमा आदि

गुणों के भण्डारों की मुझे प्राप्ति हो । अंतर आत्मा ं यही मेरी आपसे प्रार्थना है ।
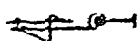
प्रभु प्रार्थना

हे ईश्वर मुझे सदबुद्धि दीजिये । जिससे मैं जीवन में सत्य ग्रहण कर सकूं ।

सत्य का भय रहित पणे (नीडर पने) आचरण करने की शक्ति दीजिये जिससे मेरी आत्मा विशुद्ध बने ।

हंसते हंसते मृत्यु का संतोप हो, जिससे मेरी विशुद्ध आत्मा अन्नत शुद्धि में मिल जावे ।

सर्व जीवों के कल्याण की भावना प्रभु से प्रार्थना में

मैत्री के परम भाजनभूत, मुदिता से प्राप्त हुए सदानंद से शोभायमान, और करुणा तथा मध्यस्थ भावना से जगत पूज्य बने योग स्वरूप हे वीतराग ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ और जगत के सब जीवों से मैं अपने अपराधों की माफी मांगता हूँ । सब जीव मुझे क्षमा करें यही मेरी प्रार्थना है ॥१॥

गुणी जनो को वन्दना अवगुण देख मध्यस्थ;
दुःखी देखी करुणा करो, मैत्री भाव समस्त ॥४॥

श्री चिरंतनाचार्य कृत महा मांगलिक श्री पंच सुत्र का पहला पाप प्रतिघातगुण बीजा धान सूत्र का अर्थ

(१) अर्थ—(प्रथम मंगला चरण) श्री वीतराग भगवान को नमस्कार हो (ऐसा कह कर उनकी विशिष्टता बताते हैं कि) वे सर्व दर्शी हैं, देवो और इन्द्रो से भी पूजित हैं, (राग द्वेषादि रहित होने से) वस्तु तत्व के यथार्थ प्ररूपक हैं। तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु और पातल) के देव, दानव और मनुष्य आदि के वे गुरू हैं, संसार में पुनः जन्म नहीं लेने वाले हैं और (एश्वर्यादि भाग्यवंत होने से) भगवान हैं।

(२) अर्थ—वे ऐसा कहते हैं कि जीव अनादि हैं। उनका संसार काम क्रोधादि और उसके फल स्वरूप जन्म मरणादि अनादि हैं। (अब यह संसार कैसा है ? वे कहते हैं कि) यह संसार दुःख रूप है। (नये नये जन्म मरणादि होने से) उसका परिणाम भी दुःख है (एक जन्म से दुसरा जन्म होने के कारण) और वह दुःख की परंपरा रूपी भी है।

जिनके भाव विशुद्ध होते रहते हैं उन साधुओं की मुझे शरण हो।

(८) अर्थ—तथा सुर असुर और मनुष्य से पूजित मोह रूपी अंधकार को नाश करने के लिये परम मन्त्र, सब प्रकार को कल्याण साधना में हेतु भुत कर्म रूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि तुल्य आत्मा के सिद्ध भाव का साधक और भगवंत (पूज्य) ऐसे श्री केवली भाषित धर्म की मुझे जाव ज्जीव शरण हो

(६) अर्थ—इन चार शरणों को प्राप्त कर अब मैं गुरु साक्षी से दुष्कृत की गर्हा करता हूँ। वह इस प्रकार जो अरिहन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं, तथा साध्वियों के प्रति दूसरे भी अन्य माननीय पूजनीय (सार्धमिकादि) धर्म स्थानों तथा माता पिता वंधु वर्ग मित्रों या उपकारियों के प्रति अथवा सामान्यतया सम्यक दर्शनादि मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए या मिथ्यात्वादि उन मार्ग के वश हुए सब जीवों के प्रति तथा मोक्ष मार्ग रूप ज्ञान, दर्शन, चारित्र में उपकारक (साधन भूत) पुस्तकादि जिन मुर्ति मंदिरादि और रजोहरणादि के प्रति तथा मोक्ष मार्ग के असाधन भूत वस्तुओं के प्रति मैंने नहीं आचरने योग्य, नहीं इच्छने योग्य पाप स्वरूप और पाप परंपराओं से पाप का बंध कराने वाले ऐसे जो कई मिथ्या आचरण सूक्ष्म या बादर (अल्प या ज्यादा)

मन से, वचन से या काया से स्वयं किये हो दूसरों के पास से कराये हो या दूसरों से किया गया अच्छा माना (अनुमोदन की) हो, वे भी राग से द्वेष से या मोह से इस जन्म में या अन्य जन्मों में वे सब मेरे पाप गुरु समक्ष गर्हनीय है। वे दुष्कृत्य (दुष्कार्य) हैं और अधर्म रूप होने से त्याग करने योग्य हैं इस बात को कल्याण मित्र ऐसा गुरु भगवन्तो के वचनों से मैंने जाना है और वह सत्य है उसको मैंने श्रद्धा पूर्वक रुचा है। इसलिए उन अरिहन्तों व सिद्धों के समक्ष में उनकी गर्हा

वार वार समागम होवो) मेरे को ऐसी (एडी प्रार्थना करवानु प्राप्त थाओ) मेरी यह प्रार्थना सफल हो। इस प्रार्थना में मुझे वहुमान हो। (ओ प्रार्थना करता मने प्रेम जागो) मैं चाहता हूं कि इसके प्रभाव से मेरी आत्मा में (कल्याण कारक सफल साधन मार्ग) मोक्ष के बीजारोपन हो और उसके फल स्वरूप मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

इन श्री अरिहन्त भगवान और कल्याण मित्र (हितैषी गुरुओं का सम्पर्क मिलते ही मैं उनकी सेवा करने योग्य वनुं। उनकी आज्ञा पालन में मेरा उद्धार है ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा वाला उनकी अज्ञा का भवती वहुमान पूर्वक स्वीकार करने वाला (गुरुओं को सर्मपित भाव वाला) होऊं, और निरातिचार से उनकी आज्ञा का सम्पूर्ण पालन करने वाला वनुं। ऐसो दुष्कृत गर्हा तथा उसके साथ साथ प्रासंगिक मनोरथ कर अव सुकृत सेवन करने को कहते हैं—

(११) संविग्न यानि मोक्ष मार्ग का पक्षकार अव इस प्रकार यथा शक्ति सुकृत सेवा रूप अनुमोदना करता हूं।

सब अरिहन्तो का घोर तप, जप और परिषह-उपसर्ग सहने आदि सव अनुष्ठानों का अनुमोदना करता हूं इसी तरह सर्व सिद्ध हुए केवल ज्ञानादि भावों की सव आचार्यों के पंचाचार के पालन रूपी सदाचारों की सव उपाध्यायों के सुत्र (ज्ञान) दान की सर्व साधुओं की (और साध्विओं की) वह साधु क्रिया की सव श्रावकों के (और श्राविकाओं

की) मन वचन काया से हुई मोक्ष करणी की तथा सब देवों तथा सर्व जीवों जो मोक्ष के लिये (चारम वर्ति) योग्य हैं और जिस कारण विशुद्ध आशय वाले हैं, उनके मोक्ष मार्ग के साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र के अनुकूल ऐसे सब योगों का मैं अनुमोदन करता हूं।

अर्थ—परम गुण निधान श्री अरिहन्तों, श्री सिद्धों, साधुओं और श्री तीर्थङ्कर कथित धर्म इन चारों के शरण के सामर्थ्य से यह मेरी अनुमोदना सम्यग विधि पूर्वक उत्तम निर्मल आशय वाली सम्यग विधि स्वीकार वाली (जीवन में वे गुण ओत-प्रोत हों) और निरातिचार (दोष रहित) हों।

अर्थ—यह दुष्कृत्य की निन्दा कौर सुकृत्य का अनुमोदना वास्तव में मैं उन अरिहन्तों आदि के प्रभाव से ही कर सका हूं क्योंकि वे अरिहन्त वगैरहा पंच परमेष्टी भगवान अचिन्तय शक्ति वाले हैं वितराग है सर्वज्ञ है परम कल्याण स्वरूप है और जिवों को परम कल्याण की साधना में हेतु (पृष्ट आलंबन) रूप है।

अर्थ—उन अरिहन्त आदि परम उपकारियों को मेरे हृदय में स्थापित करने के लिये (भाव से उनकी शरण के लिये) मैं मूढ़ अयोग्य हूँ क्योंकि मैं पापी हूं अनादि मोह से घिरा हुवा हूँ हे भगवान! मेरी आत्मा के सब प्रदेश राग द्वेष अज्ञान और मुढ़ता से वासित है जिससे अनभिज्ञ

(अज्ञानी) ऐसा मैं हिताहित को नहीं जानता आपकी अचिन्तय महिमा से मैं हिताहित को समझने वाला होऊं, अहित से निवृत होऊं, हित मार्ग में प्रवृत होऊं और मोक्ष उसके देने वाले तीर्थङ्करों, उन्हें समझाने वाले श्री सद्गुरु और मोक्ष साधक ज्ञान दर्शन चारित्र रूप धर्म इन सब का अराधक होऊं। और सब जीवों के साथ औचित्य पूर्ण आचरण करने में मेरा हित है, इस प्रकार सुकृत्य की इच्छा करता हूँ। सुकृत्य की इच्छा करता हूं। सुकृत्य की इच्छा करता हूं।

अर्थ—इस प्रकार चार शरण, दुष्कृत्य की निन्दा और सुकृत्य के अनुमोदना को जो वारम्बार सम्यग पढ़ता है, सुनता है और सुत्र के अर्थ बार वार चिन्तन करने की अनुप्रेक्षा करता है उसके अशुभ कार्मों के बंध किये रस अथवा अनुवंध अर्थात् अशुभ कर्म वंध की परम्परा मंद होती है उन उन कर्मों की स्थिति, रस और दलिमें कम होती हैं। और उसका निर्मूल नाश भी हो जाता है। इतना ही नहीं अपितु इस सूत्र के पाठ सुनने से और अनुप्रेक्षा से आत्मा में प्रगट हुए शुभ परिणाम के बल से जैसे कटक बद्ध (सर्व वगैरहे के डंक पर कपड़ा अथवा डोरी आदि से कस कर बांधने से) विष निर्बल-निष्फल हो जाता है, वैसे अशुभ कर्म वंधन कराने में असमर्थ हो जाते हैं। अल्प मात्र विपाक वाला होकर सुख पूर्वक

निर्जरी हो सके अर्थात् नष्ट हो सके वैसे और पुनः ऐसे कर्म का बन्ध न हो वैसा बन जाता है।

अर्थ—उपरान्त इस सुत्र के पाठ से सुनने से और अनुप्रेक्षा से जैसे उत्तम औषधि का विधि और परहेज पूर्वक प्रयोग करने से आरोग्य लाभ होता है वैसे आत्मा को शुभ कार्मों का बन्ध हो वैसे भाव प्रगट होते हैं इससे शुभ (पुण्यानु बंधी पुण्य) कर्मो का बन्ध होता है शुभ कर्मों की परम्परा पृष्ठ होती है, और इससे उत्कृष्ठ भाववाले शुभ कर्मो का वंध होता है। और इस तरह प्रगट हुए शुभ कर्मों का अनुबंध (परम्परा) पृष्ठ होने से शुभ भाव भी पुष्ट होते हैं, यह शुभ कर्मानुबंध निश्चित रूप से शुभ फल के (आत्मा के) ज्ञानादि गुणों को प्रगट करती है, इससे आत्मा संसार में भी विशिष्ट सुखों की भोगी बनकर परम्परा से मोक्ष सुख को प्राप्त करती है।

अर्थ—इस कारण किसी तरह के प्रतिबंध (रुकावट) सिवाय हमेशा अशुभ भावों को (मन, वचन, काया, की अनुकुल प्रवृत्तियों) रोक कर (अर्थात् शुभ भाव पूर्वक) यह सूत्र शुभ भावनाओं का (मोक्ष का) बीज होने से प्रणिधान (एकाग्रता और कर्तव्य का निश्चय) पूर्वक समयग् शान्त चित से पढ़ना चाहिए सम्यग अनुप्रेक्षा (पदार्थ विचारण) करनी चाहिये।

अर्थ—अब उप-संहार के साथ अंतिम मंगल करते हुए कहते हैं—

देव दानव जिन्हें नमस्कार करते हैं, इन्द्रो और गण-धरो आदि ने भी नमस्कार किया है उस परम गुरु श्री वितराग भगवन्तो को मेरा नमस्कार हो अन्य भी नमस्कार के योग्य सिद्धो, आचार्यों आदि तथा ज्ञानादि गुण विशिष्ट गुणवानो को मेरा नमस्कार हो, श्री सर्वज्ञ का परमोपकारी शासन जयवंता हो और वर बोधी लाभ से सर्व जीव सुखी हो ।

सर्व जीव सुखी हो ।

सर्व जीव सुखी हो ।

आत्म भावना

(गुजराती में)

आत्मा को उपदेश

अहो आत्मा ! तू विचारीजे जेके तुं अनंत काल थयो रझले छे पण दुःख नो अन्त आव्यो नहीं हवे तुं मणुष्यनो जन्म पाम्यो छे तो धर्म साधन कर के जेथी सर्वे संताप मटी जाय अेवी रीतनु धर्म साधन कर जेथी वहेला मुक्ती मले तेम कर हवे तमारे संसार में रझलवु ते ठीक नहीं मुक्ती ना कारन साचा पाम्या छो तो आ अवसर चुकवो नहीं ।

हे जीव तुं विचार तो खरो जे आ वल्त फरी कयारे मलशे ! चेत ! समज ! जाग ! जाग ! शु प्रमाद आलश निद्रा करी रहयो छे । कोन तहारो हितकारी छे जे धर्म मा साध्य कर शे ने कोण तुज ने सुख आपशे सर्वे स्वार्थीयु छे तेथी तु पोतानो स्वार्थ साधी ने सर्वे जिव ने सुखी करी ने मुक्ती नगरी मा वाशो कर तेज थारे करवा योग्य छे ते कर फरी फरी आ अवसर तु केवा पामीश ! अेम जाणीएे (आ भावना रोज भाववी) जेथी सर्वे आपदा मटी जाशे ने सर्व संपदा पामीश ते सारू हवे परमाद करीश नहीं घनु शु शीखावी अे ! जे रीते पोताने ने परने शान्ती तुष्टी पुष्टी ऋद्धि वृद्धि कल्याण मंगल जय विजय मोक्ष परम महोदय थाय नेम करजे

आबू अष्टापद गीरनार सम्मेत शिखर शत्रुंजय गिरि सार; पचें तीर्थ उत्तम ठाम, सिद्धि गया जेने करु प्रणाम,

नाम जिणा जिण नामा, ठवण जिणा जिणनामा, ठवण जिणा, जिन पड़िमा, ठव्व जिणा जिन जीवा, भाव जिणा समव सरणठ्ठा ॥१॥

प्रभु नाम की बलिहारी

जेम मन्त्र थी झेर उत्तरी जाय, रोग मटी जाय, तेम प्रभु नाम थी मिथ्यात्व, अव्रत जेग कषाय, कर्म रोग सर्वे मीटी जाय ॥

प्रभु नाम

अतित (भूतकाल) के चौवीस तीर्थंकरों के नाम

ॐ श्री केवल ज्ञानी, निर्वाणि, सागर, महायश, विमल, सर्वानुभूति, श्रीधर, श्रीदत्त, दामोदर, सुतेज, स्वामी, मुनिसुव्रत, सुमति, शिवगति, अस्ताग, नमिश्वर, अनिल, यशोधर, कृतार्थ जिनेश्वर, शुद्धमति, शिवकर, स्यन्दन, संप्रति ।

ये अतित काले थई गया ते सर्वे ने महारी अन्नती क्रोडाण क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होजो ॥

वर्तमान के चौबीस तीर्थंकरों के नाम

ॐ श्री ऋषभ-अजित-संभव-अभिनन्दन-सुमति-पदमप्रभु-सुपाशर्व---चन्द्रप्रभु–सुविधि--शीतल--श्रेयांस--वासुपूज्य--

विमल–अनन्त,–धर्म-शान्ति-कुन्थु--अर–मल्लि–मुनि सुव्रत–नमि, नेमी, पार्श्ववर्द्धमान, जिनाः शान्तः शान्ति करा भवंतु स्वाहाः ।। जे रीते तमो शांति पाम्या ते रीते सर्व जीवा ने शान्ति करो अेम मारी विनती छे ।।

अनागत (भविष्य काल में होने वाले) चौबीस तीर्थंकरों के नाम

ॐ श्री पद्मनाम–शुर देव-सुपार्श्व-स्वयप्र भ-सर्वानुभूति-देव श्रुत–उदय-पेढ़ाल पोट्टिल– शत कीर्ति–सुव्रत–अमम–निष्कषाय निष्पुलाक–निर्मम–चित्रगुप्त-समाधि–संवर-यशोधर–विजय-मल्लि-देव, अनन्तवीर्य-भद्रंकर, अे चौविश प्रभु थसे तेने मारी अंनती क्रोडान क्रोड वार त्रिकाल वंदना होजो ।।

श्री वीश विहरमान के नाम वर्त्तमान काल में विचरते हैं ।

जम्बुद्वीप के महाविदेह में

१. श्री सीमधर स्वामी । २. श्री युगमंधर स्वामी । ३ श्री बाहु स्वामी । ४ श्री सुबाहु स्वामी ।

धात की खंड के पूर्वार्ध महाविदेह में

५. श्री सुजात स्वामी । ६. श्री स्वयं प्रभ स्वामी । ७. श्री ऋषभानन्द स्वामी । ८. श्री अनंतवीर्य स्वामी ।

धात की खंड के पश्चिमार्ध महाविदेह में

९. श्री सुर प्रभा स्वामी १०. श्री सुविशाल स्वामी
११. श्री वज्रधर स्वामी १२. श्री चन्द्रानन स्वामी

पुष्करद्वीप के पुर्वार्ध महाविदेह में

१३. श्री चन्द्र बाहु स्वामी १४. श्री भुजंगदेव स्वामी
१५. श्री ईश्वर स्वामी १६. श्री नेमि प्रभ स्वामी

पुष्कर वर द्वीप के पश्चिमार्ध महाविदेह में

१७. श्री वीर सेन स्वामी १८. श्री महा भद्र स्वामी
१९. श्री देवयश स्वामी २०. श्री अजित वीर्य स्वामी

ए वीशे विहरमान ने मारी अंन्नती क्रोडाण क्रोडवार त्रिकाल वंदना होजो

चार शाश्वता जिन ना नाम

१. श्री ऋषभानन जी २. श्री चन्द्रानन जी ३. श्री वारिषेण जी ४. श्री वर्धमान जी

अतित अनागत ने वर्तमान काल ना बहोतर तीर्थङ्कर, वीस वीहरमान, चार शाश्वता जिन मली धीन्नु जिन ने करु प्रणाम ।

शाश्वती प्रतिमाओं को नमस्कार

शाश्वती प्रतिमा पांचशे धनुष्य नी तथा सात हाथ नी छे रत्न नी छे दीव्य छे मनोहर छे जेने दीठे शाश्वता

सुखनु पाम वा पणु थाय छे जे व्यंतर निकायमा असंख्यता ज्योतिष मा असंख्यता जिन वीब छे वली यण भुवनमा पंदरासो ने बेतालीस क्रोड़ अठावन लाख छत्रीस हजार ने अॅसी शाश्वता जिन वीब छे वली यण भुवनमा पंदरासो ने बेतालीस क्रोड़ अठावन लाख छत्रीस हजार ते अॅसी शाश्वता जिन वीब छे ते सर्वे ने माहरी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होई जो ।

अ शाश्वती प्रतिमाओं को नमस्कार

वली आ शाश्वती प्रतिमा आबू जी मा आदिश्वरजी नेमी नाथ जी पारस नाथ जी शान्ती नाथ जी प्रमुख जिन वींब घना छे वली अन्नता जीव मुक्ती पाम्या ते सर्वे ने माहरी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होई जो

अष्टापदजी उपर आदीश्वर भगवान दश हजार मुनि साथे मुक्ती वर्या भरत महाराजजी अे सोनानु दहेरू कराव्यु रत्न ना चौवीश जिन बिंब भराव्या ।

चतारी अठ्ठ दश दोय वंदीया जिनवरा चऊव्वीस परमठ्ठ निठ्ठि अठ्ठा सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥१॥

वली गोतम स्वामी पोतानी लब्धी अे अष्टापद चढ़ी प्रभु ने वांदि जग चिन्तामणी नु चैत्य वंदन करी त्रियक जृंभक देवता ने प्रतिबोध करी पंद रशे तापस ने पारणा करावी केवल ज्ञान पमाड़यु वली रावने विणा वगाड़ी

तीर्थङ्कर गोत्र बान्धयु वली अन्नता जिव मुक्ति गया ते सर्वे ने मारी अन्नती क्रोड़ाण क्रोडवार त्रिकाल वंदना होईजो।

वली गीरनारजी ऊपर नेमिनाथ जी अे अेक हजार पुरुष साथे दिक्षा लीधी संसार नु स्वरूप घणु नठारू जाणयु संसार दुःख रूप दुःख भरेलो दुःख नो कारण सच्चा सुखनो वैरी, हला हल विष जेवो बलती आग जेवो जाणी नीकली पड़ा, चारित्र पाली पचावन में दिवशे केवल ज्ञान पाम्या पांचशे धत्रिश साथे मुक्ति गया सातसे वरश सुधी केदली पर्याय पाली घना जीव ने प्रति बोधी ने मुक्ति गया अनंता जीव मुक्ति वर्या ते सर्वे ने मारी अन्नती क्रोड़ान क्रोडवार त्रिकाल वंदना होईजो।

वली समेतशिखरजी ऊपर वीशेटुके वीश प्रभुजी सतावीश हजार त्रणशे ओगन पचास मुनि साथे मुक्ति पाम्या वली शामला पारशनाथजी वीराजे छे वली अन्नता जीव मुक्ति गया ते सर्वे ने मारी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होईजो।

तारगाजी मा अजित नाथजी ने मारी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होईजो।

चम्पा नगरी मा वासु पूज्यजी मुक्ति गया वली पावापुरीये महावीर जी सिद्धिवर्या ते सर्वे ने मारी अन्नती क्रोड़ान क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होईजो।

श्री सिद्धाचलजी ऊपर आदिश्वरजी पूर्व नवाणु वार समो सर्या अन्नत लाभ जाणी वली अन्नत जीव मुक्ति वर्या वली जिन बींब घना छे ते सर्व ने मारी अन्नती क्रोड़ान क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होईजो।

हवे द्रव्य जिन ते तीर्थङ्कर पदवी भोगवी ने पोताना शाशनो परिवार लईने मुक्ति मा वीराजे छे ते सर्व ने मारी अन्नती क्रोडान क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होईजो।

वलो आवते काले तीर्थङ्कर पदवी पामशे ते श्रेणिक राजा ना जीव प्रमुख ते मारी अन्नती क्रोडाण क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होईजो।

वली मारा जिव ने निगोद माथी बहार काढ़यो ते सिद्ध ना जिव ने माहरी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़वार त्रिकाल वंदना होईजो।

हवे भाव जिना "समवसरणठ्ठा" समो सरन ने विषे विश विहरमान जी केवा छे ! तो पांच सो धनुष्य नी देह छे सोवन सामी काया अेक हजार आठ (उत्तम) उद्धार लक्षण छे ज्ञानातिशये करी ने सर्व पदारथ जाणी रहया छे दर्शने करी सर्व भाव देखी रहया छे वचनासिशये करी भवी जीव ने प्रति बोध करे छे जेथी कोई जीव तो क्षपक श्रेणी चढे छे कोई तो साधु पणु पामे छे कोई तो श्रावक पणु पामे छे वली कोई समकीत पामे छे कोई तो भद्र भाव ने पामे छे अे रिते बहु जिव ने संसार ना कलेश थी चुकावे छे

वली पूजा सेवा, भक्ति, वंदना, स्तवना, कर वानु मन थाय छे तेथी पुजी, सेवी, वांदी प्रभु सरखा पूजनिक थाय छे अपायापगमाति शये करो ने भवी जीवो ना आ भवना ने भवो भवना कष्ट दुःख आपदा टाले छे, ओ चार महा अतिशय वली अशोक वृक्ष शोभे छे फुल तो वृष्टी ढ़ीचन सुधी थाय छे, पांच वर्णना फुल जल थल ना नीपज्या वरसे छे, वली प्रभुनी वाणी अेक जोजन सुधी संभलाय छे वली प्रभुजी ने चामर वींजाय छे वली रत्न ना सिहासन पर बैठा छे, वली भामन्डल पुठे राजे छे आकाशे दुंद भी गाजे छे वली त्रण छात्र माथे छाजे छे वली बारे गुणे करी राजित छे अठारा दोषे करी रहित छे केवल ज्ञान केवल दर्शन आदि दई अनन्त गुण करी सहित छे, तरन तारन जहाज समान छे कल्याणक ने दिवशे नरके पण अजवाला थाय छे वली महा गोप महा माहण जग साथ्थवाह अेवी ओपमा छाजे छे मोक्षा नो साथी छे क्रोड़ केवली बे हजार क्रोड़ साधु, गणधर, केवल ज्ञानी, साधु, साध्वी श्रावक श्राविका चतुर्विध संघ समकीती जीव वली द्वाद शांगी वाणी, वली मुनि आणा पालवा वाला अनंता जीव मुक्ति पाम्या वली प्रभु आणा पाले छे वली आवती काले आणा पालशे से सर्व ने मारी अन्नती क्रोड़ाण क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होईजो ।

[प्रार्थना] अे वंदना नु फल अंज मांगु छु जे मारा

जिवने तमारा सरीखो करो श्रेज विनती छे जे थकी मारा मन ना परिनाम तमारा जेवा सुन्दर मनोहर थाय जे थकी तमारा जेवो केवल ज्ञान केवल दर्शन चारित्र स्थिरता रूप केवल श्रेकलु सुख ।

सर्वे दुःखथी रहित साधु सुख, श्ररुपीगुण वली श्रगरु श्रलघु श्रवगाहना, वली सादि श्रन्नत में भागे स्थिति फरी संसार मा श्रावक नहीं श्रनंतु विर्य वली क्रोध नहीं मान नहीं माया नहीं लोभ नहीं राग नहीं द्वेष नहीं मोह नहीं श्राशा तृष्णा वर्ण गंध रस फरस भुख, तरस ठाढ़, तड़को, दुःख कलेश, संताप श्रेहवा श्रन्नता दोषे करी रहित पण मारी सतामा छे ते श्रन्नता गुण प्रगट थावो सर्वे जिवो नी सता मार्ग ते पण प्रगट थावो श्रेज मारी श्रर्ज छे जे रिते पोताने ने पर ने शान्ती तुष्टी पुष्टी ऋद्धि वृद्धि कल्यान मंगल जय विजय मोक्ष परम महोदय थाय तेम करो श्रेज महारी विनती छे ।

श्ररिहन्त भगवान ने सर्वे सिद्ध भगवान ने श्राचार्य जी ने उपाध्याय जी ने सर्वे साधु महाराज ने वली दर्शन ज्ञान चारित्र तप श्रे नवपदजी ने माहरी श्रन्नती क्रोडान क्रोड़ वार त्रिकाल वंदना होजो ।

श्रेम नवपद ध्यावे परम श्रानंद पावे नवमे भव शिव जावे, देव नर भव पावे ज्ञान विमल गुण गावे सिद्ध-चक्र प्रभावे सवी दुरित समावे विश्व जयकर पावे ।
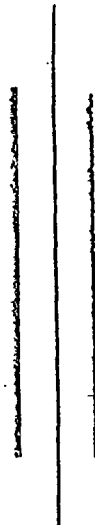
स्वतन्त्र विभाग

अथ लावणी

चल चेतन अब उठ कर अपने जिन मंदिर जईए,
किसी की भूंड़ी ना कहिये, किसी की झूठी ना कहिये,
'चल चेतन अब उठ कर अपने जिन मंदिर जईये'
चरण जिनराज तणा भेटो,
भवो भव संचिय पाप करम सब तन मन से मेटो,
सुकृत कीजे मोरी जान, सुकृत कीजे मोरी जान,
समकित अमृत रस पीजे, जिनवरजी का गुण भजि लीजे,
लाभ जिन भगति का लहिये ॥ चल चेतन ॥१॥
करो मत मुख से वड़ाई,

प्रभु सन्मुख बोलने के दोहे

श्री जग नायक, तुं धणी महा मोटा महाराज ।
मोटे पुन्ये पामीयो, तुम दरसन मैं आज । १ ।

☼

आज मनोरथ सब फले, प्रगटे पुण्य कलोल ।
पाप कर्म दूरे टल्या, नाठा दुःख दंदोल । २ ।

☼

प्रभु दरसन सुख सम्पदा, प्रभु दर्शन नव निद्धि ।
प्रभु दर्शन थी पामीए, सकल पदारथ सिद्ध । ३ ।

☼

भावे जिनवर पूजिये भावे दीजे दान ।
भावे भावना भावीए, भावे केवल ज्ञान । ४ ।

☼

जिवड़ा जिनवर पूजिये, पूजा ना फल होय ।
राजा नमे प्रजा नमे, आण न लोपे कोय । ५ ।

☼

जग में तीर्थ दोय वड़ा, शत्रुंजय गिरनार ।
एक गढ़ ऋषभ समोसर्या, एक गढ़ नेम कुमार । ६ ।

☼

फूला केरा बाग में, बैठा श्री जिनराज ।
जिम तारामा चंद्रमा, तिम सोहे महाराज । ७ ।

☼

वाड़ी चम्पो मोगरो, सोवन, कुपलिया, ।
पास जिनेश्वर पूजिये, पांचों अंगुलिया । ८ ।

☼

प्रभु नाम की औषधी, खरे मन से खाय ।
रोग शौक व्यापे नहीं, महा दोष मिट जाय । ९ ।

☼

प्रभु नाम अमोल है, यह जग में नहीं मोल ।
नफा बहुत टोटा नहीं, झट पट मुख से बोल । १० ।

☼

आभा व्हाली बीजली, धरती व्हालो मेह ।
राजुल व्हाला नेमजी, अपनो व्हालो देह । ११ ।

☼

अरिहन्त सिद्ध आचार्य भला उपाध्याय महाराज
साधु सेवो भाव से यह पांचु मंगलिक काज ।
विघ्न हरण मंगल करण आदि नाथ भगवान
भजिया से भव दुःख हरे निश्चय दिल में जान ।
शान्ति नाथ साता करे निर्मल चित जपाय
शुद्ध मन से सेवा करे भव भव पातिक जाय ।
पारस नाथ को समरिये एक घड़ी चित लाय
सर्व रोग दुरे टले सकल विघ्न टल जाय ।
महावीर महाराज को भेटे भवि चित लाय
शासन के सिरताज है सबकी करसी सहाय ।

हाथ जोड़ विनति करूं सुनिए दीनानाथ
श्री संघ है आपका रखो चरण का दास ,

प्रभु प्रार्थना-गीत

आव्यो दादा ने दरबार, करो भवो दधि पार,
खरो तुं छे आधार, मोहे तार तार तार, । १ ।
आत्म गुणगो भंडार, तारा महीमानो नहीं पार,
देख्यो सुन्दर दीदार, करो पार पार पार, । २ ।
तारी मूर्ति मनोहार, हरे मन ना विकार,
खरो हैया नो हार वंदु वार वार वार, । ३ ।
आव्यो देरासर मोझार, कर्यो जिनवर जुहार,
प्रभु चरण आधार, खरो सार सार सार । ४ ।
आत्म कमल सुधार, तारी लब्धी छे अपार
अेनी खुबी नो नहीं पार, विनति धार धार धार । ५ ।
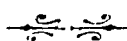
तारे आंगणे आव्या, खाली नव गया,
तेम जाणी हुं आव्यो, भव भ्रमण थी दादा
हुं थाकी गयो तार तार मुज ने भवोदधि
थो तारजे, पतित पावन अधम उद्धारण
तु धणी गणी गुणाकर आव्यो छुं तुम पास जे
कंचन कामिनी राज पाट मांगु नहीं,
मांगु छु अेक शिवपुरी नो वासज ।

सिद्ध श्री परमात्मा, अरि गंजन अरिहन्त ।
इष्ट देव वन्दू सदा, भय भंजन भगवन्त ॥१॥
अरिहन्त सिद्ध समरुं सदा, आचारज उवझाय ।
साधु सकल के चरण कुं । वन्दूं शीश नमाय ॥२॥
अनन्त चौबीसी जिन नमुं, सिद्ध अनन्ता क्रोड़ ।
विहरमान जिनवर सबे, केवली नमूं कर जोड़ ॥३॥
गणधरादिक साधुजी, समकित व्रत गुणधार ।
यथायोग्य वंदना करूं, जिन आज्ञा अनुसार ॥४॥
शासन नायक समरिये, भगवन्त वीर जिनन्द ।
अलिय विघन दूरे टरे, आपे परमानन्द ॥५॥
अंगुठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, मन वंछित फल दातार ॥६॥
श्री गुरुदेव प्रसाद से, होय मनोरथ सिद्ध ।
ज्यो घन बरसत बेलि तरु, फुल फलन की वृद्ध ॥७॥
पंच परमेष्टि देवको, भजन पूर पहिचान ।
कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण ॥८॥
श्री जिन युग पद कमल में, मुझ मन भमर वसाय ।
कब उगे वो दिन करूं, श्री मुख दर्शन पाय ॥९॥
प्रणमी पद पङ्कज भणी, अरि गञ्जन अरिहन्त ।
कथन करूं अब जीव को, किञ्चित मुझ विरतंत ॥१०॥
आरंभ विषय कषाय वश, भमियो काल अनन्त ।
लख चौरासी योनि में, अब तारो भगवन्त ॥११॥

देव गुरु धर्म सूत्र में, नव तत्वादिक जोय।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छामि दुक्कडं मोय। १२।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग।
वैद्यराज गुरू शरण थी, औषधी ज्ञान वैराग। १३।
जे मैं जीव विराधिया सेव्या पाप अठार।
प्रभु आपकी साख से, बारम्बार धिकार। १४।
बुरा बुरा सबको कहूं बुरा न दीसे कोय।
जो घट सोधुं आपनो, तो मोसूं बुरा न कोय। १५।
कहेवा में आवे नहीं, अवगुण भरयो अनन्त।
लिखवा में क्योंकर लिखूं, जाणो श्री भगवन्त। १६।
करूणा निधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रन्थी भेद। १७।
पतित उद्धारण नाथजी अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब मांहरी, खमिये वारंवार। १८।
माफ करो सब मांहरा, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष। १९।
आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवन्त वंदन भाव।
राग द्वेष पतला करी, सबसे खमत खमाव। २०।
छुटूं पिछला पाप से नवा न वांधु कोय।
श्री गुरु देव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय। २१।
परिग्रह ममता तजि करि पञ्च महाव्रत धार।
अन्त समय आलोयणा, करूं संथारो सार। २२।

तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित मन्न ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ॥२३॥
अरिहन्त देव निग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म ।
केवली भाषित शास्त्रए, एही जिनमत मर्म ॥२४॥
आरम्भ विषय कषाय तज, सुध समकित वर्तधार ।
जिन अज्ञा परमान कर, निश्चय खेवो पार ॥२५॥
क्षण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काम ।
भणनो गुणनो सीखनो, रमणो ज्ञान आरम ॥२६॥
अरिहन्त सिद्ध सब साधुजी जिन अज्ञा धर्म सार ।
मंगलिख उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार ॥२७॥
घड़ी घड़ी पल पल सदा प्रभु समरण को चाव ।
नर भव सफलो जो करे, दान शीयल तप भाव ॥२८॥

दोहा

अरिहन्त अरिहन्त समरतां, लाधे मुक्ति नु धाम ।
जे नर अरिहन्त समरशे, तेहना सरसे काम ॥१॥
सूतां बेसतां उठतां जे समरे अरिहन्त ।
दुःखिया नां दुःख टालशे, लहेशे सुख अनंत ॥२॥
आशा करो अरिहन्त नी बीजो आश निराश ।
ते जगमां सुखीया थया, पाम्या लील विलास ॥३॥
चेतन ते ऐसी करी, जैसी न करे कोय ।
विषया रसने कारणे, सर्वस्व बैठो खोय ॥४॥

रात्रि गमाई सोय के, दिवस गमाया खाय।
हीरा जैसा मनुष्य भव, कवडी बदले जाय ॥५॥
जो चेताय तो चेतजे, जो बुझाय तो बुझ।
खानारा सहु खाई जशे, माथे पड़शे तुझ ॥६॥
पप्पो तो परख्यो नहीं, दद्दो कोधो दूर।
लल्ला शुं लागी रह्यो, नन्नो रह्यो हजूर ॥७॥
परलोके सुख पामवा, कर सारो संकेत।
हजी बाजी छे हाथमा, चेत चेत नर चेत ॥८॥
जन्म जरा मरणे करी, भरियो आ संसार।
जे प्रभु आणा मानशे, तस नहीं भीति लगार ॥९॥
निद्रा आलस परिहरी, करजे तत्व विचार।
शुभ ध्याने मन राखजे, श्रावक तुझ आचार ॥१०॥
जिन पूजा जिस घर नहीं, नहीं सुपात्र दान।
ते केम पामे बापड़ा, विद्या रूप निधान ॥११॥

प्रभु प्रार्थना (गीत)

पायो प्रभु को दरबार, हुऐ दर्शन सुखकार।
तीनों जग के आधार, तूंहि सार सार सार ॥१॥
मूर्ति शोभे अपार, जिन मन्दिर मंझार।
दीपे अङ्गी मनोहार, वन्दु वार वार वार ॥२॥
तुज वीना आधार, भम्यो अनन्त संसार।
अब कृपा भंडार, दया धार धार धार ॥३॥

दुःख सहया अपार, करो भवदधि पार ।
तुंहि तारण हार, करो पार पार पार ॥४॥
नेमि–अमृत–मनोहर, खान्ति शोभे अपार ।
निरंजन निराकार, मोहे तार तार तार ॥५॥

प्रार्थना

हे प्रभु आनन्द दाता, ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों से, दूर हमको कीजिये ॥
लीजीये हमको शरण में, हम सदा चारी बने ।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक, वीर व्रत धारी बने ॥
प्रेम से हम गुरु जनों की, नित्य ही सेवा करें ।
सत्य बोलें झूंठ त्यागें, मेल आपस में करें ॥
निंदा किसी की हम किसी से, भूल कर भी न करें ।
धैर्य बुद्धि मन लगा कर, वीर गुण गाया करें ॥
अष्ट कर्म जो दुःख हेतु हैं, उनके क्षय का करें उपाय ।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय ॥
हाथ जोड़ कर शीष नमावें, सेवक जन सब खड़े खड़े ।
श्री जिन पूरो आस हमारी, चरण कमल में आन पड़े ॥
अ मंगल दुरे करो, मंगल सिद्धि काज ।
अष्ट कर्म निवार वा प्रभु वधावुं आज ॥
हे प्रभु ! अध्यात्मिक शान्ति प्रदान करना ।
हे प्रभु ! सुमति देना, हे प्रभु कुमति टालना ॥

हे प्रभु ! लज्जा रखना, हे प्रभु इच्छा पूर्ण करना ।
हे प्रभु ! शुद्ध भावनाएं देना, हे प्रभु ! शुद्ध ज्ञान दर्शन देना,
हे प्रभु ! शुद्ध चारित्र तप देना ।
हे प्रभु ! ब्रह्मचर्य पालन करने की शक्ति देना ।
हे प्रभु ! आचार विचार देना, हे प्रभु ! विनय विवेक देना ।
हे प्रभु ! सच्चे रास्ते चलाना, हे प्रभु ! बुरे कामों से बचाना
हे प्रभु ! मूलचंद की प्रार्थना
शरण आये की विनती स्वीकारना ।

प्रातः समरण

लब्धिवंत गोतम गणधार, बुद्धि ए अधिका अभयकुमार,
प्रह उठीने करि प्रणाम, शियल वंताना लिजे नाम ॥१॥
पहला नेमि जिनेश्वर राय, बाल ब्रह्मचारी लागुं पाय,
बीजा जंबुकुमार महा भाग, रमणी आठ नोकीधो त्याग ॥२॥
त्रीजा स्थुल भद्र साधु सुजन्न, कोश्या प्रति बोधी गुण खान,
चौथा सुदर्शन शेठ, जेने कीधो भवनो अंत ॥३॥
पांचमा विजय शेठ नर नार, शियल पाली उत्तर्या भवपार,
ए पांचने विनती करे, भव सायर ते हेला तरे ॥४॥
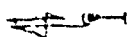
आटलुं तो आपजे भगवान

(राग-आधेश्री)

आटलुं तो आपजे भगवान ! मने छेल्ली घड़ी ना रहे
माया तणां बंधन, मने छेल्ली घड़ी ।।टेक।।
आ जिंदगी मोंघी मली, पण जीवन मा जाग्यो नहीं।
अंत समय मने रहे साची समज छेल्ली घड़ी।
।। आटलुं तो आपजे ।।
ज्यां मरण शय्या परे, मींचाय छेल्ली आंखडी।
तुं आपजे त्यारे प्रभुमय, मनमने छेल्ली घड़ी।
।। अटलुं तो आपजे ।।
हाथ पग निर्बल बने, ने श्वास छेल्लो संचरे, ओ दयालु !
आपजे, दर्शन मने छेल्ली घड़ी ।। आटलुं तो आपजे ।।
हुं जीवन भर सलगी रह्यो, संसार ना संताप मां।
तुं आपजे शान्ति भरी, निद्रा मने, छेल्ली घड़ी ।।आटलुं०।।
अगणित अधर्मो में कर्या, तनमन वचन योगे करी।
हे क्षमा सागर ! क्षमा, मने आपजे, छेल्ली घड़ी ।।आटलुं०।।
अंत समय आवी मुजने ना दमे षट दुश्मनो।
जागृत पणे मनमा रहे, तारु स्मरण छेल्ली घड़ी ।।
आटलुं तो आपजे भगवान ! मने छेल्ली घड़ी ।।

श्रावक के २१ गुण वर्णन प्रार्थना

दोहा

हे प्रभु मुझ विनती, सुनिये कृपा निधान ।
दीन दुःखी मोहे जानके, दया करो भगवान् ॥१॥
श्रावक कुल में अवतर्यो आरिज क्षेत्र विख्यात ।
धर्म जैन दिल में वस्यो, लेस नहीं मिथ्यात ॥२॥
पण श्रावक गुण गहन है, इक्कीस संख्या सार ।
तीण की मुझको चाहना, अर्पो प्रभु दातार ॥३॥
सर्व प्रथम न्याय करी, द्रव्य कमावा दक्षे[1] ।
पूरण शरीर निरोगता[2], स्वाभाव हृदये स्वच्छ[3] ॥४॥
सामान्य जन वछत्र भलगे, राजादिवा सम्मत[4] ।
पर वंचन बुद्धि रहित[5] उत्तम गुण संयुत ॥५॥
वहु विध कर्म ने चूखा, धर्म क्रिया निर्भीक[6] ।
अमायी[7] गुण सातमो; उपकार बुद्धि में ठीक[8] ॥६॥
लज्जा सहित अकार्य[9] में त्रस स्थावर प्रति पाल[10] ।
वहुधा राग द्वेषे रहित[11] श्रावक गुण मणिमाल ॥७॥
देखन मात्र सु सर्व ने, आनन्द दायक[12] होय ।
पक्षपाती गुणनों सदा, नहीं कदाग्रह कोय[13] ॥८॥
शोभन धर्म कथा कथक, वंशो उभय विशुद्ध[14] ।
दीर्घ विचारक कार्य[15] में गुण अवगुण में विबुध्य[16] ॥९॥

अनुकरणो[17] वृद्ध लोकनो, विनयवन्त[18] रहे नित ।
जाणे अन्य उपकारने,[19] भवो दधि तारण चित[20] ॥१०॥
सभा चतुर इकवीसमो, श्रावक गुण सुविशाल ।
ए हवा गुण उद्यम करे, दूर टले दुःख जाल ॥११॥
इण विध अर्जी आपसे, विनय सहित ममआश ।
पूर्ण करो प्रभु पार्श्वजी, यही करूं अरदास ॥१२॥
शिवपुर जांता जिवने, इनसे होत सहाय ।
॥ नेम ॥ सदा मनमें धरूं 'अमर' करो मुज काय ॥१३॥

श्री सिद्ध गिरि नुं स्तवन

सिद्ध गिरि स्वामी आदि जिणंद, कापो अमारा भवना फंद
सिद्ध गिरि स्वामी आदि जिणंद......१
देव अमारा श्री अरिहन्त, त्यागी अमारा गुरु गुण वंत ।
सिद्ध गिरि स्वामी आदि जिणंद......२
श्री जिन भाषित हमारो धर्म, जेह थी लहिए सुर शिव
(शर्म) सुख धाम । सिद्ध गिरी स्वामी आदि जिणंद......३
पहेलुं हो श्री अरिहन्त, बीजुं शरण हो, सिद्ध भगवंत ।
सिद्ध गिरी स्वामी आदि जिणंद......४
त्रीजुं शरण हो गुरु गुणवंत, चोथुं शरण हो धर्म जयवंत ।
सिद्ध गिरी स्वामी आदि जिणंद......५
(तिन तत्व अणे चार शरण)
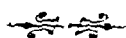
शरण लेकर (सदाचार)

अरिहन्त प्रभु का शरणा लेकर, क्रोध भाव को दूर करें।
क्षमा भाव से शांति धर कर, ,मीठा ही व्यवहार करें ॥१॥
सिद्ध प्रभु का शरणा लेकर, मान बड़ाई दूर करें।
विनीत भाव से छोटे बन कर लघुता का व्यवहार करें ॥२॥
आचार्य देव का शरणा लेकर, झुठ कपट का त्याग करें।
सीधा सादा रहना सीखें, जीवन सारा सरल करें ॥३॥
उपाध्याय का शरणा लेकर, खोटी तृष्णा दूर करें।
आवश्यकता से ज्यादा लक्ष्मी, तज कर निज कल्याण करें ॥४॥
मुनियों के चरणों में नमकर अपना हम उद्धार करें।
मूल कषायों के क्षय करके, वीतराग पद प्राप्त करें ॥५॥
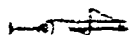
ॐकार स्तोत्र

(राग-गान वन्देमातरम्)

सिद्धि दायक हर्ष प्रेरक मंत्र ए ॐ कार छे;
सौ दुःख नाशक औषधि सम एक ए ॐ कार छे ॥१॥
वांच्छना दीलनी पुरे ते एक ए ॐ कार छे;
उर्ध्व गतिना आत्मनो दीप ए ॐ कार छे ॥२॥
शांतिना साम्राज्यनो शूर दूत ए ॐ कार छे;
शुद्ध ने पावन जीवननुं पेट ए ॐ कार छे ॥३॥

सृष्टि नु कल्याण तत्त्व सत्य ए ॐ कार छे;
पुण्य गठड़ी बांध नारो एक ए ॐ कार छे ॥४॥
ज्ञान, तप चारित्र दर्शक केन्द्र ए ॐ कार छे;
जीवनो जे शिव सरजे एक ए ॐ कार छे ॥५॥
पावन करे जे जिंदगी ने एक ए ॐ कार छे;
सहु धर्मनों सहु कर्मनों उच्च मंत्र ए ॐ कार छे ॥६॥
साधु अने सन्यासी ओनो प्रिय जाप ए ॐ कार छे;
अव धूत अने योगी जनोनु गान ए ॐ कार छे ॥७॥
संसार ज्वालामां हिमालय एक ए ॐ कार छे;
चिर शांति सुख विश्राम मंदिर एक ए ॐ कार छे ॥८॥

ॐ अर्हम् प्रार्थना

ओम् अर्हम् बोल वन्दे ओम् अर्हम् बोल ॥टेक॥
जिसने इसका जाप किया है, उसने सागर पार किया है।
तू भी मुख से बोल वन्दे ओम् अर्हम् बोल ॥१॥
सुगुणी जनों का जीवन प्यारा, कर्म रोग का मेटन हारा।
अर्हम् अर्हम् बोल वन्दे ओम् अर्हम् बोल ॥२॥
रवि ने निशि को दूर किया है। मंत्र ने कर्म को चुर किया है।
अर्हम् मुख से बोल वन्दे ओम् अर्हम् बोल ॥३॥

अब तो है यह एक सहारा, मोक्ष मार्ग का देवन हारा।
फिर भी मुख से बोल, बन्दे अर्हम् बोल ॥४॥
जैन शासन यह बोल रहा है, ओम् अर्हम् का शरण लिया है।
सदा हृदय से बोल, बन्दे ओम् अर्हम् बोल ॥५॥

प्रार्थना (नवकार की महिमा)

सुवह और शाम की प्रभुजी के नाम की,
फेरो एक माला हो हो फेरो एक माला ॥ टेक ॥
सकल सार नवकार मन्त्र है, परमेष्ठी की माला।
नरकादिक दुर्गति का सचमुच जड़ देती है ताला।
कर्मों का जाला मिटे तत्काला फेरो एक माला
॥ हो हो ॥
सुदर्शन और सीताजी ने फेरी थी यह माला।
शुली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला।
शील जिसने पाला, सच्चा है राम वाला। फेरो एक
माला ॥ हो हो ॥
समरण करके श्रीमति ने नाग उठाया काला।
महा भयंकर विषधर था वह वनी पुष्प की माला।
धर्म का प्याला पियो प्यारे लाला फेरो एक माला
॥ हो हो ॥

द्रोपदी का चीर बढ़ाया दुःशासन का मद गाला।
मैना सुन्दरी श्री पाल का जीवन बना विशाला ॥
सुभद्रा ने तोला, चम्पा द्वार खोला फेरो एक माला ॥हो हो॥
राज दुलारी बाल कुमारी, देखो चन्दन बाला।
महा भयंकर कष्ट उठाया, सिर मुंडा था मूला ॥
तपस्या का तेला, सब दुःख ठेला, फेरो एक माला ॥ हो हो॥
समय बितता जाये मित्रों, इसको सफल बनालो।
सद्गुरु के चरणों में आकर परमेष्ठी ध्यान लगालो।
गुण गावे भोला, हरि ऋषि बोला, फेरो एक माला ॥हो हो॥

ईश प्रार्थना

[तर्ज–रघुपति राघव राजाराम]

ॐ अर्हं जय हे महावीर, शासन नायक गुण गंभीर।
त्रिशला नन्दन श्री महावीर, शासन नायक गुण गंभीर ॥१॥
जय जय शान्तिनाथ भगवान्, पतित पावन तुम हो स्वाम।
मन वंच्छित देवो अभिराम, विश्व शान्ति का अविचल
धाम ॥२॥
घर घर वर्ते मंगल माल, हो त्रिशला के नन्दन लाल।
काटो कर्मो के जाल, शरणे आये हे रखवाल ॥ ३ ॥
सदबुद्धि देना भगवान करना मेरा तुम कल्याण।
जिन अरिहन्त तुम्हारा नाम, वितराग पद पाये स्वाम ॥ ४ ॥

जय जय हो जिनवर भगवान् संघ के नायक गुणमणि खान ।
जय जय हो हरि पुज्य प्रधान, कान्ति सागर गावे
गुण गान ॥ ५ ॥

ईश-प्रार्थना

ॐ जय जिनराज प्रभो, स्वामी जय जिनराज प्रभो ॥टेर॥
शासन स्वामी अन्तरयामी, तीरथनाथ विभो ॥
अरहा अर्हन् अरुह अभोगी, ईश्वर अरिहन्ता ॥
केवल दर्शन केवल-ज्ञानी, योगी जयवंता ॥ ॐ जय ॥१॥
सत्य सनातन शुद्ध सुखाकर शंकर शिववासी ॥
अजर अमर अज अतुल वली हो, अविचल अविनाशी ॥२॥
परम पुरुष परमातम पद पद प्रियतम प्रिय कारी ॥
वीतराग सुख शान्ति विधाता, भव भव भय हारी ॥ ३ ॥
तुमही परम पिता परमेश्वर, तुमही शिव दाता ॥
तुमही सहज सखा हो स्वामी मात तात भ्राता ॥ ४ ॥
अजव निराली शक्ति तिहारी, महिमा अतिभारी ॥
चरण कमल में शीष झुकाते, सुन नर व्रत धारी ॥ ५ ॥
तव स्मरण से पाप हमारे, सारे हट जावे ॥
विपदा सारी दूर विलावें वांछित फल पावे ॥ ६ ॥
आश हमारी पूरण करिये, भव दुःख दूर करो ॥
डूवत्त है अब नाव भंवर में, सागर पार करो ॥ ७ ॥

भगवान तेरे पद पंकज के हम "मधुकर" बन जाव
यही कामना एक हमारी, सत्य पर डट जावें ॥ ॐ

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति भर्वतु ॥

प्रभु प्रार्थना (दोहा)

जल हल ज्योति स्वरूप तु, केवल कृपा निधान
प्रेम पुनित तुजं प्रेरजे, भय भजन भगवान ।
नित्य निरंजन नित्य छो, गंजन गंज गुमान ।
अभिवंदन अभिवंदना, भय भंजन भगवान ॥
धर्म धरण तारण तरण, चरण शरण सन्मान ।
विघ्न हरण पावन करण, भय भंजन भगवान ॥
भद्र भरण भीति हरण, सुधा झरण शुभवान ।
क्लेश हरण चिंता चुरण, भय भंजन भगवान ॥ ४
अविनाशी अरिहंत तु, एक अखंड अमान ।
अजर अमर अणजन्म तु, भय भंजन भगवान ॥ ५ ॥
आनंदी अपवर्गि तु, अकल गति अनुमान ।
आशीष अनुकूल आपजे, भय भंजन भगवान ॥ ६ ॥
निराकार निर्लेप छो, निर्मल नीति निधान ।
निर्मोहक नारायण, भय भंजन भगवान ॥ ७ ॥
सचराचर स्वंम् प्रभु, सुखद सोंपजे सान ।
सृष्टिनाथ सर्वेश्वरा, भय भंजन भगवान ॥ ८ ।

संकट शोक सकल हरण, गौतम ज्ञान निदान।
इच्छा विकल अचल करो, भय भंजन भगवान ॥ ९ ॥
आधि व्याधि उपाधिने, हरो तंत तोफान।
करुणालु करुणा करो, भय भंजन भगवान ॥१०॥
किंकरनी कंकर मति भूल भयंकर भान।
शंकर ते स्नेहे हरो, भय भंजन भगवान ॥११॥
शक्ति शिशुने आपसो, भक्ति मुक्तिनु दान।
तुज जुक्ति जाहेर छे, भय भंजन भगवान ॥१२॥
निति प्रीति नम्रता, भली भक्ति नुं भान।
आर्य प्रजा ने आपशो, भय भंजन भगवान ॥१३॥
दया शांति औदार्यता धर्म मर्म मन ध्यान।
संप जंप वण कंप दे, भय भंजन भगवान ॥१४॥
हर आलस एदीपनुं, हर अध ने अज्ञान।
हर भ्रमणा भारत तणी, भय भंजन भगवान ॥१५॥
तन मन धनने अन्न नुं, दे सुख सुधा समान।
आ अवनी नुं कर भलुं भय भंजन भगवान ॥१६॥
विनय विनंति रायनी, धरो कृपाथी ध्यान।
मान्य करो महाराज ने, भय भंजन भंजन भगवान ॥१७॥

(वसंत तिलका वृत)

संसार मां मन अरे क्यम मोह पाये।
वैरागमा झट पड़्ये गति एज जाये ॥

माया अहो गणी लहे दिल आप आवी।
"आकाश-पुष्प थकी वंध्य सुता वधावी ॥
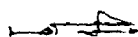
जयवन्ता जिनवर श्री सीमधर स्वामी नमोनम

एक चित्त बन्दु हो वेकर जोड़ने, मन शुद्ध वन्दु हो
शीश निवाइणे।
पूर्व दिशा हो प्रभुजी पइवइया नगरी पूडरपुर सुख
ठाम ठाम बेकर जोड़ी हो श्रावक विनवे ॥ १ ॥
चौतीस अतिशय हो प्रभुजी शोभता वाणी पणरे
उपर बीस बीस एक सहस लक्षण हो प्रभुजी आगला,
जित्या राग ने रिस ॥ २ ॥
काया थारी हो धनुष पांचसो आऊखो पूर्व चोरासी
लाख २ निर्वध वाणी हो श्री वितरागनी, ज्ञानी
आगम गया छे छे भाष ॥ ३ ॥
सेवा सारे हो थारी देवता, सुरपति थोड़ा तो एक
क्रोड़ २ मुझ मन माहे हो होस वसे
घणी वंदु वेकर जोड़ ॥ ४ ॥
आडा पर्वत हो नदिया अति घणी, बिचमें विकट
विद्याधर गाम २ इण भव माहे तो आय सकु नहीं,
लेसु नित उठ आपरो नाम ॥ ५ ॥

कागद लिखु हो प्रभुजी थांहने, बिनती वंदना
वारम्बार २ कुन्दन सागर हो कृपा कीजिये,
म्हारी विनतड़ी अवधार, उतारो नी भव पार २ ॥ ६ ॥
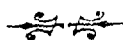
श्री चौवीस तीर्थंकर नमो नमः

श्री पेसरिया यन्त्र गर्भित चौवीस जिन का छन्द

२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

श्री नेमिश्वर संभव स्वाम, सुबुद्धि धर्म शान्ति अभिराम ।
अनंत सुव्रत नमिनाथ सुजाण । श्री जिनवर मुझ करो
कल्याण । अजितनाथ चन्दा प्रभु धीर, आदिश्वर सुपास
गंभीर । विमल नाथ विमल जग जाण ॥ श्री जिन०॥

मल्लिनाथ जिन मंगल रूप, पंचवीस धनुष्य सुन्दर स्वरूप,
अरनाथ नमुं वर्द्धमान ॥ श्री जिनवर० ॥
सुमति पद्म प्रभु अवतंस, वासु पूज्य शीतल श्रेयस ।
कुन्थु पास अभिनन्दन भाण ॥ श्री जिनवर० ॥
इण पर जिनवर संभारिये, दुःख दालिद्र दूर निवारिये ।
पांचवीस पैसट परिमाण ॥ श्री जिनवर० ॥
इम भणतां दुःख न आवे कदा, जो जन पासे राखे सदा ।
धरिये पांच तणों नित्य ध्यान ॥ श्री जिनवर० ॥
जिनवर नामे वांछित फले, मन चिन्तया वालेसर मले,
धर्मसिंह मुनि नाम निधान । श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।

उसभसेनजी गोतम, आदि गणधर राज।
श्रुत केवली, केवल हो, मुझ मंगल राज॥
लब्धि-तपधारी, सती-सन्त, महाराज।
निर्मल मन सुमरे, पावे मंगल राज॥ ३॥

ब्राह्मी–चंदनादि सोले सती सिरताज।
शरण में पाया, खुले भाग्य मुझ आज॥
जिन नाम प्रसादे मंगल मुझ भर पूर।
चक्रेश्वरी आदि करती मुझ दुःख दूर॥ ४॥

जिन धर्म प्रभावे यक्षादि अनुकूल।
समदृष्टि देव मुझ, करते मंगल मूल॥
धन–धान्य–सम्पदा, मुझ घर निधि सार।
विध–विध सुख देखु, भरा रहता भंडार॥ ५॥

चिंतामणि सम यह, पूरे मंगल आस।
रोग-शोक, दलिदर मिटे सभी मुझ त्रास॥
यह कल्प तरुसम, महिमा अपरम्पार।
मंगल फल प्रसवे वरते मुझ जयकार॥ ६॥

यह कामधेनुवत्, पारस सम सुखकार।
मुझ हृदय-कमल में हुआ सुख संचार॥
यह चन्द्र–किरण सम, चित–चकोर सुहाय।
दोषी, दुश्मन, खल, पड़त सब मुझ पाय॥ ७॥

इसके शुभ तेजे जहां कहीं में जाऊं।
घर, लछमी–लीला, मन माने सुख पाऊं॥

मंगलाष्टक जपते बरते मंगल माल ।
तास गांव वसते गावे घासीलाल ॥ ८ ॥

ते दिन कयारे आवशे, श्री सिद्धाचल जाशुं ।
ऋषभ जिणंद जुहारीने, सुरज कुंडमां न्हाशुं ते दि० ॥ १ ॥
समवसरण मां बेसीने, जिनवरनी वाणी ।
सांभलशुं साचे मने, परमारथ जाणी ते दि० ॥ २ ॥
समकित ब्रत सूधा करी सद्‌गुरू ने वंदी ।
पाप सर्व आलोई ने, निज आत्म नंदी ते दि० ॥ ३ ॥
पड़िक्कमणां दोय टंक नां, करशु मन कोड़े ।
विषय कषाय विसारी ने, तप करसुं होड़े ते दि० ॥ ४ ॥
वहाला ने वैरि विचे, नवि करसुं चहेरो ।
परना अवगुण देखी ने, नवि करसुं चहेरो ते दि० ॥ ५ ॥
धर्म स्थानक धन वापरी, छक्काय ने हेने ते दि० ॥ ६ ॥
कायानी माया मेली ने, परिसह ने सहेशुं ।
सुख दुःख सखे विसारी ने समभावे रहेशुः ते दि० ॥ ७ ॥
अरिहन्त देवने ओलखी गुण तेहना गाशुं ।
उदय रतन प्रेम उच्चरे, न्यारे निर्मल थाशुं ते दि० ॥ ८ ॥
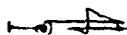
श्री शान्तिनाथाय नमः

श्री शान्तिनाथ जी की स्तुती

(तर्ज—ओम जय जगदीश हरे)

ॐ जयश्री शांति जिनंद स्वामी जय श्री शान्ति जिनन्द ।
अष्ट कर्म हर लिजो, दीजो परमानन्द ॥ ॐ ॥
मङ्गल मय इक तुं ही जग में जिन राया ॥ स्वामी० ॥
जिसने तुझको ध्याया, अविचल सुख पाया ॥ ॐ ॥
रोग शोग भय दुःख से मानव घबराया ॥ स्वामी० ॥
तेरी शरण में आकर सब दुःख बिसराया ॥ ॐ जय० ॥
सकल राष्ट्र में शान्ति, देश में हो शान्ति ॥ स्वामी० ॥
समाज में शान्ति हो, घर घर में शान्ति ॥ ॐ ॥
जन जन के घर घर में शान्ति चाहुं ॥ स्वामी० ॥
मैं भी तुम में मिलकर शान्ति पद पाऊ ॥ ॐ ॥
विश्वसेन अचला के नन्दा, अर्जी सुन लिजो ॥ स्वामी० ॥
सुख सम्पति बल वैभव, जीत सदा दीजो ॥
॥ ॐ जय श्री शान्ति जिनन्द ॥
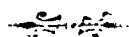
श्री पार्श्वनाथाय नमः

श्री पारस नाथजी की स्तुती

तुम हो तारन तरन लेलो अपनी शरण, पारस प्यारे ।
मेटोजी मेटो भव दुःख हमारे ॥टेक॥

दुष्ट कर्मों ने मुझको सताया, चारों गतियों में
भव भव घुमाया। इनसे रक्षा करो कष्ट मेरा हरो
आय द्वार ॥ मेटो मेटोजी भव-दुख हमारे ॥ १ ॥
मैंने संकट में तुमको पुकारा तेरे चरणो का
लिना सहारा। नैया मझधार है तेरा आधार है
तारन वारे ॥ मेटो मेटो जी भव दुःख हमारे ॥ २ ॥
चोर चंडाल और भील तारे, और पापी अधम
भी उबारे जिसने ध्याया तुम्हें दुःख निवारे ॥
मेटो मेटो जी भव दुःख हमारे ॥ ३ ॥
मैंने अपना स्वरूप न जाणा पर पर में हुआ हुं दिवाना।
पर मैं रमता रहा, चाह करता रहा बिन विचारे।
मेटो मेठो जी भव दुःख हमारे ॥ ४ ॥
अब तो श्रद्धा से मस्तक नवाऊं सारी विपदा
तुझे सुनाऊं। मेटो मेटोजी भव दुःख हमारे।
प्रेम व्याकुल खड़ा तेरे चरणों पड़ा कर किनारे ॥
मेटो मेटोजी भव दुःख हमारे ॥ ५ ॥

स्तवन चिन्तामण जी का

चिन्तामण स्वामी अर्ज हमारी सुन लिजिये ॥चि० अ०॥टेर॥
तुम राजा हम प्रजा तुम्हारी, निश दिन करते सेवा।
सु नजर करके मुझकूं दीजे अविचल सुख
का मेवा हो ॥ चि० अ० ॥ १ ॥

तुम शिववासी हम जग वासी, एही वड़ा अंधेरा।
इसकूं आप विचारो मन में, कैसे होय निवेरा हो ॥
॥ चिं० अ० ॥ २ ॥

दीनानाथ दयाल कहावो, जग जीवन जिन राया।
ऐसा विरुद तुम्हारा साहिब, सब ही के मन भाया हो ॥
॥ चि० अ० ॥ ३ ॥

चरण कमल की सेवा चाहुं ए ही विनती मोरी।
कहत अवीर कृपा जिनवर की, लागी मुक्ति की
डोरी हो ॥ चि० अ० ॥ ४ ॥

॥ ह्रीं महावीराय नमः ॥

श्री महावीर प्रभु की स्तुती

जय जय हो शासन के स्वामी। त्रिशाला नन्दन
अन्तर्यामी ॥ टेर ॥

तुम अजर अमर अविनाशी हो। तुम केवल ज्ञान
प्रकाशी हो। हे वितराग गुण के धामी। सबको
सन्मार्ग वताया था। पापी को पार लगाया था।
तारे अर्जुन से खल कामी ॥ २ ॥

तुमने तारी चंदन वाला। मेटी चन्ड कोशिक की
ज्वाला। शरणागत के रक्षा गामी ॥ ३ ॥

मैं और शरण में आया हुं इन कर्मों से घबराया हूँ ।
अब आश तेरी है सत धामी ॥ ४ ॥
झूठे जग के वैभव देखे हंस हंसकर बान्धे भव लेखे
बनकर मोह माया अनु गामी ॥ ५ ॥
सब स्वार्थ का संसार लखा फिर भी नहीं आंखे
खोल सका चौरासी लख गति का गामी ॥ ६ ॥
तिरने वाले को क्या तारा । अन तिरिये को तेरा
सहारा ॥ हे दीन बन्धु करुणाधामी ॥ ७ ॥
निश्चय में शरणा तेरा है । एक धर्म ही साथी
मेरा है भव भव में जिन पद अनुगामी ॥ ८ ॥
पग पग पर नाथ सुधी लीजो कुमती टालो सुमती
दीजो । अब लाज रखो अन्तर्यामी ॥ ९ ॥
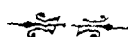
अथ प्रभातीऊं

जब जिन राज कृपा करे तब शिव सुख पावें अखय
अनोपम संपदा नव निधि घरे आवें जब० ॥ १ ॥
ऐसी वस्तु जगत में दिल शाता आवें सुर तरु रवि
शशि प्रमुख जे जिन तेजे छिपावे जब० ॥ २ ॥
जनम जरा मरण तणी दुःख दूर गमावें मन वनमां
ध्यान नु जल धर वरसावें जब० ॥ ३ ॥

चितामणि रियणें करी कोंण काग उड़ावे तिम
मूरख जिन छोड़ीनें अवर कुं ध्यावे जब० ॥ ४ ॥
इंड़ो भमरी संग थी भमरी पद पावें तिम ज्ञान
विमल प्रभु ध्यान थी जिन उपमा आवें जब जिन
राज कृपा करें तब शिव सुख पावें ॥ ५ ॥
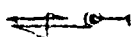
मुक्ति की डिगरी

मेरी अदालत प्रभुजी कीजिये, जिन शासन नायक ।
मुक्ति जाने की डिगरी दीजिये ॥ टेर ॥
खुद चेतन मुद्दई बना है, आठों कर्म मुद्दायला ।
खुद चेतन मुद्दई बना हे, आठों कर्म मुदायला ।
दावा रास्ता मुक्ति मार्ग का, धोका देकर टाला ॥ १ ॥
तप कागज स्टाम्प मंगाया, लेख क्षमा विचारी ।
सज्झाय ध्यान मजमून बनाकर, अर्जी आन गुजारी ॥ २ ॥
मैं जाता था मुक्ति मार्ग में, कर्मो ने आघेरा ।
धोखा देकर राह भुलाया, लूट लिया सब डेरा ॥ ३ ॥
बहुत खराब किया कर्मो ने, चौरासी के मांही ।
दुःख अनंता पाया मैंने, अन्त पार कछु नांई ॥ ४ ॥
सच्चे मिले वकील कानूनी, पंच महाव्रत धारी ।
सूत्र देख मैं सौदा कीना, तब मैं अर्जी डाली ॥ ५ ॥

असल करज जो था कर्मो का, चेतन सेती दिलाया।
शुद्ध संयम जब कीनी जमानत, आगे का दुःख मिटाया ॥१७॥
आश्रव छोड़ संवर को धारो, तपस्या में चित लावो।
जल्दी करज अदा कर चेतन, सीधा मुक्ति में जाओ ॥१८॥
शुद्ध संयम जब बना जमानत, चेतन डिगरी पाई।
फागण सुदी दशमी दिन मंगल, उगणीसे आठो मांही ॥१९॥

प्रार्थना (रघुपति राघव)

ॐ अर्हं प्रभु पारस नाथ, जय अर्हं प्रभु पारस नाथ।
पार उतारु पारस नाथ पूजुं प्रणम् पारस नाथ ॥
ॐ पदमावती पारस नाथ, जय पदमावती पारस नाथ।
शीष झुकाऊं जोडूं हाथ, ॐ पदमावती पारस नाथ ॥
ॐ पदमा जय पदमा पदमावती प्रभु पारसनाथ।
दुःख हर सुखकर पारसनाथ, पदमा सेवित पारसनाथ ॥
जय मंगल मय पारसनाथ, हे पदमावती पारस नाथ ॥
सुख सागर प्रभु पारस नाथ, जय भगवान पारसनाथ ॥
जिन हरि पूजिन पारसनाथ, कवि ज्ञान
दान दो पारसनाथ ॥

श्री शंखेश्वर जिन स्तवन

(राग भैरवी)

मुख बोल जरा यह कहदे खरा, तूं और नहीं मैं और नहीं।
तू नाथ मेरा मैं हूं जान तेरी, मुझे क्यों विसराई जान मेरी ॥
जब करम कटा और भरम फटा, तूं और नहीं मैं
और नहीं ॥ १ ॥

तूं है ईश जरा मैं हूं दास तेरा, मुझे क्यों न करो
अब नाथ खरा। जब कुमति टरे और सुमति वरे,
तूं और नहीं मैं और नहीं ॥ २ ॥

तूं है पास जरा मैं हूं पास परा, मुझे क्यों न छुड़ावो
पास टरा, जब राग कटे और द्वेष मिटे।
तूं और नहीं मैं और नहीं ॥ ३ ॥

तूं है अचर वरा मैं हूं चलन चरा, मुझे क्यों न बनावो
आप सरा। जब होश जरे और सांग टरे,
तूं और नहीं मैं और नहीं ॥ ४ ॥

तूं है भूप वरा शंखेश खरा, मैं तो आत्माराम
आनंद भरा। तुम दरस करी सब भ्रांति हरी,
तूं और नहीं मैं और नहीं ॥ ५ ॥

ख- स्तवन (प्रार्थना)

प्रभु मोहे अपना मनाना होगा,
मनाना होगा बनाना होगा ॥ अंचली ॥
शरणागत वत्सल मैं आया हूं शरणे,
सेवक जानि निभाना होगा ॥ १ ॥
शरण न तुम बिन मोहे किसी का,
अबतो अपना कहाना होगा ॥ २ ॥
जला रहा है मोहे क्रोध दावानल,
क्षमा वर्षा से बुझाना होगा ॥ ३ ॥
मान अहि मोहे खाय रहा है,
नम्रता देके बचाना होगा ॥ ४ ॥
माया प्रपञ्च मोहे उलझा रहा है,
देके सरलता छुड़ाना होगा ॥ ५ ॥
लोभ सागर में मैं डूब रहा हूं,
संतोष नाव तराना होगा ॥ ६ ॥
काम सुभट मेरे पीछे लगा है,
दे ब्रह्मचर्य हटाना होगा ॥ ७ ॥
ज्ञाता के आगे अधिक क्या कहना,
आखिर पार लगाना होगा ॥ ८ ॥
आत्म लक्ष्मी सहर्ष मनाया,
वल्लभ अपना बनाना होगा ॥ ९ ॥

श्री पार्श्वनाथ जी की स्तुति

पार्श्वनाथ सहाई जाके, कमी रहे नहीं काई ।
वन में मङ्गल रण मे रक्षा, अग्नी होत शितलाई ॥
जहां जहां जाऊं तहां तहां आदर, आनन्द रंग बरसाई ।
कहा करे द्वेषी जन कोऊ, बाल न बांको थाई ॥
भजन करे सो नव निधि पावें, विष अमृत हो जाई ।
रूप चंद प्रभु के गुण गावे, जन्म जन्म सुखदाई ॥

जिनजी से अरज का स्तवन

प्रभुजी पट्टा लिखा दो मेरा, मैं सच्चा नोकर तेरा,
प्रभुजी पट्टा लिखादो मेरा मैं दिन भर नौकर तेरा,
प्रभुजी पट्टा लिखादो मेरा, मैं हुक्मी चाकर तेरा,
दवात मंगादू कलम मंगादू, पाना मंगादू कोरा ॥१॥
मुक्ति पुरी को जागीरी लिखादो मस्तक मुजरा मेरा,
प्रभुजी पट्टा लिखादो मेरा, मैं सच्चा नौकर तेरा ॥२॥
ज्ञान ध्यान का महल बनाया, दरवाजे रखा पेरा,
सुमति सिपाही राखो, चोर न पावे घेरा ॥३॥
पंच हथियार जतन कर राखो, मनवा राखो धीरा,
क्षमा खड़ग लई पार उतरना, जब तक मुजरा मेरा ॥४॥
कोड़ो कोड़ी माया जोड़ी माल भर्या बहुत तेरा,
जम का दूत पकड़ने आया, लूट लिया सब डेरा ॥५॥
तन मन धन दरियाव भर्यो रे नाव जो खावे हेला,
कहे कान्ति विजय कर जोड़ी अन्त पन्थ का धेला ॥६॥

– स्तवन –

मैं आया तुझ दरबार प्रभु, तिर जाने के लिये
जाप जपुं निश दिन तुम्हारा शिव पाने के लिये
कोटी कोटी सूरज से भी कान्ती अती जिनवर की
रूप अनुपम पुण्य अनुपम शक्ति अति जिनवर की
दर्शन कर के दिलड़ा डोले मुंख जय जय बोले ॥ मैं आया. ॥
राग नहीं है रोष नहीं है शान्त सुधारस पुरव है
मुर्त सुरत सुन्दर सोहे भक्तों के भव ताप है
ऐसे तारक जिनवर दर्शन महा पुण्य मिले ॥मैं आया तुझ.॥
डग मग डोले नाव हमारी भव सागर मंझार,
प्रभु जग उद्धारक विरुध धराया करदो नइया पार
प्रभु अमियां वर्षे नयन में भविजन भावे डोले ॥ मैं आय० ॥
आत्म कमल भिक्षा दो मेरा लब्धी के भन्डार
प्रभु लक्षमण कीर्ति केरी विनति उतारो भव पार
प्रभु ध्यान धरुं निज रूप प्रभु प्रगटाने के लिये
मैं आया तुझ दरबार प्रभु तिर जाने के लिये
जाप जपुं निश दिन तुम्हारा शिव पाने के लिये

स्तवन सात वार का

रविवार दिन भोली दुनियां, मनुष्य जमारो पाय जी ।
छव काया री आरंभ करता, गया जमारो हारजी ॥
सुणो भवियण महावीर जी री वाणी, सत पुरुषां री
अमृत वाणी ॥ १ ॥

सोमवार रे सुता मुरख, मन मतवाली नींद जी।
काल सिराणे आण खड़ो, जिम तोरण आयो बींद जी
|| सुणो० || २ ||

मंगलवार रे मंगलाचार दया धर्म सु प्रेम जी समायिक
प्रतिक्रमणो करता लाहो ल्यो नित नेम जी
|| सुणो० || ३ ||

बुधवार रे वलि अवस्था बुढ़ापो दुःख दाय जी।
बैठे खाट पोल के उपरे, पड़ियो करे विलाप जी
|| सुणो० || ४ ||

बृहस्पतिवार रे विखो पड़ियो, कोई न मेटनहार जी।
मात पिता री करो बंदगी, जिम उतरो भव पार जी
|| सुणो० || ५ ||

शुक्रवार रे शुक्राचार, जासी शिवपुर मांय जी।
अनंत सुखां में डेरो दियो, ज्यारो हुजासी खेवो पार जी
|| सुणो० || ६ ||

थावर वार रे थिरचा हुसी, हुं धनवंत नार जी।
सेर सेर सोनो पहरती, मोत्यां भरती मांग जी
|| सुणो० || ७ ||

ए सातुंवार सदा सिमरीजे, आ सतगुरु की सीख जी।
ल सातुंवार नित नित समरियां, हुजासी खेवो पार जी
|| सुणो० || ८ ||

पखवासे (१५ तिथि) का स्तवन

एकम जीव अकेलो आयो, फेर अकेलो जासी ।
प्रभु भजन की करलो खर्ची, आगे ही सुख पासी ॥
चतुर नर ! ज्ञान विचारो, चतुर नर ! अर्थ विचारो ।
अब बीतो पखवाड़ो, चतुर० नर ॥ टेर ॥ १ ॥

बीज तरणा दोय जन्म मरण का, दोनों दुरंत छे पूरा ।
दान शियल ने भाव करीने, मुक्ति पहोंता शूरा,
चतुर नर० ॥ २ ॥

तीज तरणा तीनों ही गुप्ती, मन वच काया धारो ।
पांच सुमति सेंठी कर राखो, ज्यो शिवपुर अवधारो,
चतुर नर० ॥ ३ ॥

चौथ चौकड़ी लारे लागी क्रोध-मान-मद-माया ।
यांसे जीत्या उत्तम प्राणी, अविचल पदवी पाया,
चतुर नर० ॥ ४ ॥

पांचम पांचोंई इन्द्रि वश कर राखो, विषय स्वाद निवारो ।
शुभ ध्यान हृदय में धरतां, भव-भव में निस्तारो,
चतुर नर० ॥ ५ ॥

छट्ठ तणी छहों लेश्या जाणो, पद्म सुक्ल छे भारी ।
ए ध्यावे कोई पुण्यवंत प्राणी, तिरिया बहु नर नारी,
चतुर नर० ॥ ६ ॥

सातम सातोंहि समुद्र धातु छे, निणरा भेद पिछाणो ।

चेत सके तो चेत रे प्राणी ! आय मिल्यो छे टाणो,

चतुर नर० ॥ ७ ॥

आठम आठों ही कर्म सबल हैं, कोईक उत्तम जीत्या ।

कर्मो रे वश कदेई न पड़िया, सदा रहा निचीत्या,

चतुर नर० ॥ ८ ॥

नम तणा नव तत्वों भारी, नवपद नवकर वाली ।

दर्शन ज्ञान चारित्र तप करिने, भव भव फेरा टाली,

चतुर नर० ॥ ९ ॥

दसम दशों ही प्राण तणा सुख, त्यागे सो वैरागी ।

निद्रा विकथा दूर निवारो प्रभुजी से लौ लागी,

चतुर नर० ॥१०॥

इग्यारस ईग्यारे पडिमा, उत्तम श्रावक धारे ।

देहजि पर मोह न राखे, पर भव पार उतारे,

चतुर नर० ॥११॥

बारस बारह व्रत विचारी पड़िकमणो शुद्ध (ज) कीजे ।

सूधे मन सामायिक करने, दान सुपात्रे दीजे,

चतुर नर० ॥१२॥

तेरसरे दिन तेरे काठिया, लारे लागा आवे ।

ज्ञानी होय सो नहीं ठगावे गाफिल्ल गोता खावे,

चतुर नर० ॥१३॥

चौदस है गुण ठांणा चवदे, उपरला छे भारी ।

न्द्रिय तणा जे स्वाद चाखे, नीची ममता धारी,

चतुर नर० ॥१४॥

पूनम पनरे कर्मादान सूं, अलगा रहजो भाई।
पनरे जोग मना कर राखो, ज्यों सुधरेला कमाई,

चतुर नर० ॥१५॥

ओ संसार है हाटको मेलो, ज्यों आसी त्यों जासी।
चेत सके तो चेत रे प्राणी ! आगे ही सुख पासी,

चतुर नर० ॥१६॥

जैन धर्म हृदय में धरतां, शङ्का मुलमति आणो।
'डूंगरसी' कहे कर जोड़ी ने, भव भव फेरा टालो,

चतुर नर० ॥१७॥
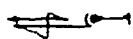
अथ बारह मास की सज्झाय

चेत कहे तूं चेत चतुर नर, तीन तत्व पेछाण।
अरिहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरुजी, धर्म दया में जाण हो ॥
सुणजो भवि जीवा, जतन करोजी बारह मास में ॥ १ ॥

वैशाख कहे विश्वास न कीजे छिन छिन आयु छीजे।
छव काया की हिंसा करतां किण विध प्रभुजी रीझेजी ॥
(पाप अठारह सेवता किण विध प्रभुजी रीझे ॥

सुणजो भवी जीवा० ॥ २ ॥

जेठ कहे तूं है अति मोटो, किसे भरोसे बैठो।
दिन दिन चलणो नेड़ो आवे, लेलो धर्म को ओटोजी ॥

सुणजो भवी जीवा० ॥ ३ ॥

आषढ़ कहे आतम वश करिये, सबही काज सुधारिये ।
थोड़ा भवा के भाय निश्चय, मुगत तरणा सुख वारियेजी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।। ४ ।।

श्रावण कहे कर साधु की संगत, लेले खरची लार ।
बार बार सतगुरु समझावे, वृथा जन्म मत हारजी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।। ५ ।।

भादों कहे भगवत की वाणी, सुणियां पातक जावे ।
शुद्ध भाव से जो कोई श्रद्धे, गर्भ वास नहीं आवेजी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।। ६ ।।

आसोज कहे तूं आछी करले नरभव दुर्लभ पायो ।
धर्म ध्यान में सेंठो रहिजे, मत पड़जे भर्म माही जी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।। ७ ।।

कार्तिक कहे तूं कहां तक है, हृदय मांही विचारो ।
मात पिता सुत बहन भाणजा, अन्त समय नहीं थारोजी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।। ८ ।।

मिगसर महे मृग सम्पे जीवड़ो, काल सिंह विकराल ।
खुट्यों आउखो उठ चलेगो, काया नाखेगा जालजी ।।
सुणजो भवी जीवा ।। ९ ।।

पोष कहे तूं पाप करता पर भव (से) नहीं डरता ।
पाप कर्म का कारज करने क्यों दुरगत में पड़ता जी ।।
सुणजो भवी जीवा० ।।१०।।

माघ कहे मोह माहीं उलभयो, कर रह्यो महारो महारो ।
धन कुटुम्ब सब छोड़ जायेगा, काल को होयगो चारोजी ॥
सुणजो भवी जीवा० ॥११॥

फागण फागसु सब संग खेलो, ज्ञान तणो रंग घोलो ।
कर्म वर्गणा गुलाब उड़ावो, जलावो भव भ्रमण होली जी ॥
सुणजो भवी जीवा० ॥१२॥

उगणीसे पचास फागणे, नाथ दुवारे आया ।
गुरु खूबा रिखजी प्रसादे, केवल रिख बणाया जी ॥
सुणजो भवी जीवा० ॥१३॥
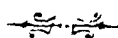
महापुरुषों का त्याग मय जीवन

जिन्होंने जग त्याग दियारे, हमतो निर्ग्रंथ मुनियों के दास ॥टेर॥
प्राणी मात्र को दुःख नहीं देते, समझे आत्म समान,
जिनके दिल में सदा दया का झरना झरता झरझर महान
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ १ ॥

मिथ्या वचन कभी नहीं बोले, निकले चाहे प्राण,
मधुर सत्य के द्वारा करते, निज पर का कल्याण
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ २ ॥

अकल्पित वस्तु नहीं लेते, नहीं बढ़ाते हाथ,
भगवान वीर वचन की गाथा, रखते हैं निश दिन साथ
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ३ ॥

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते सभी प्रकार,
विषयों की आशा नहीं जिनको, कर शक्ति सविकार
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ४ ॥

कोड़ी मात्र को पास नहीं रखते सब धन धूल समान,
किन्तु ज्ञान की अक्षय निधि से, पूरे हैं धनवान
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ५ ॥

विना खेद के कठिन तपस्या करते हैं निष्काम
सदा कर्म शत्रु के दम से करते हैं संग्राम ॥जिन्होंने ॥ ६ ॥

हर्ष शोक नहीं लाते मनमें, सुख दुःख एक समान
चंचल मन को चित करके, करते हैं निर्मल ध्यान ॥
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ७ ॥

भिक्षा द्वारा विधी से लेते, निर्दूषण आहार,
रूखा सूखा भोजन पाकर, रहते हैं मुदित अपार ॥
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ८ ॥

मरणान्तिक उपसर्गों से भी, भय नहीं करें लगार,
काम शत्रु पर विजय वंत हो, करते हैं हंस हंस वार ॥
जिन्होंने जग त्याग दियारे ॥ ९ ॥

विना सवारी पैदल चलते, नंगे ही पांव विहार,
चाहे ठन्डी सर्दी गर्मी हो, करते हैं निडर विहार ॥
जिन्होंने जाग त्याग दियारे ॥१०॥

कहे कहां तक जिनके गुण हो, पूर्ण अपरम पार,
अमर कहे इनके भक्ति से होता है बेड़ा पार ॥जिन्होंने०॥११॥

कृत पापों का मिच्छामि दुक्कड़म्

(तर्ज—जिसने राग द्वेष का मादिक०)

हिंसा मुझको नहीं सुहाती, हिंसा करता जाता,
झूठ न मुझको कभी सुहाता, झूठ बोलता जाता हूं,
मेरी चोरी मैं न सहूं पर हां ! नित चोरी करता हूं,
प्रभो ! पाप से पिंड छुड़ावो, यही अरज नित करता हूं ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य की बात करूं पर घात निरन्तर करता हूं,
पाप परिग्रह पुण्य मान में, भूल परिग्रह करता हूँ,
पांच पाप ये महा भयंकर पाप ताप में तपता हूँ,
पापी हूं पर पुण्यवान होने को हरदम खपता हूँ ॥ २ ॥

क्रोध करूं सारा जग जाने, पर समभावी बनता हूं,
मान करूं है पाप किन्तु मन, धीर वीर में बनता हूं,
माया जाल करूं चतुराई, पर जग को दिखलाता हूँ,
लोभ पाप का मूल पर, पुण्यवानी अपनी गाता हूं ॥ ३ ॥

यह कषाय भी पाप रूप है, इनसे होती दुर्गतियां,
छोड़ नहीं सकता हूँ कारण, मेरे मन की दुर्मतिया,
पापों में समता भरी हुई, रहता है सुख का लेश नहीं ॥ ४ ॥

निष्पापी जीवन धन धन, जीना मरना जयकारी,
पापी जन जीते मरते हैं, निष्पापी की बलिहारी।
हरि 'कवीन्द्र' जिन देव कृपा से वह दिन धन मेरा होगा,
मिच्छामि दुक्कड़ं ही पूर्वक, जीना होगा मरना होग ॥ ५ ॥

श्री महावीर स्वामीजी का पालना

हीरे मोतियन से मढ़ा, पालणा रत्न जड़ित।
रेशम डोरी हाथ में, त्रिशला गावे गीत॥
मीठे मीठे गीत........मेरे लाल को सुणांवुरी।
सोजा मेरे लाल........तुझे पारणा झुंलाऊंरी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुंलाऊंरी॥ १॥

जैन शासन का तूं होगा सितारा,
अहिंसा का पाठ पढ़ाना होगा।
सूर वीरता का पाठ मेरे लाल को पढ़ाऊंगी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुंलाऊंरी॥ २॥

न्याय नीती में तूं बलवान होगा,
दया और दान का खजाना भी होगा।
सत्य धर्म मेरे लाल मैं समझाऊंरी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुंलाऊंरी॥ ३॥

जैन की ज्योति तूं होगा,
आत्म ज्ञान का पुजारी तूं होगा।
मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ्य समझाऊंरी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुलाऊंरी॥ ४॥

विश्व प्रेमी और दयालु होगा,
संयम में तूं सूरवीर होगा।
अमर तेरा गुण होगा आशीष बरसाऊंरी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुंलाऊंरी॥ ५॥

जन्म कल्याणक दिन घर घर मनाये,
गुरू कृपा से भक्तों गुण गाये।
ओ मेरे कुंवरजी तोपे वारि वारि जाऊंरी,
सोजा मेरे लाल तुझे पारणा झुलाऊंरी ॥ ६ ॥
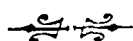
सरस्वती स्तोत्र

श्री संखेश्वरा प्रभु पास जिनवरा० ए राह—

जय सरस्वती शुभ दीजीये मति,
विद्या विवेक वद्धिनी भजो श्री भगवती ॥ टेर ॥
प्रथम नाम जपो परभाते, नित्य प्रति भारती माता।
दूजो नाम सरस्वती जेहनो, आ जगमें विख्यात ॥जय०॥१॥
तृतीय नाम शारदा देवी, नित्य प्रति करिये ध्यान।
हंस गामिनी नाम चतुर्थो, सकल ज्ञाननी खान ॥ २ ॥
पंडित्तमति पांचमी जाणो, निर्मल मति दातार।
वागेश्वरी षष्टम ए नामें, विद्याना भंडार ॥ जय० ॥ ३ ॥
सप्तम नाम कुमारिका देवी, ब्रह्म व्रतनी धार।
ब्रह्म चारिणी अष्टम कहिये, नवमें त्रिपुरा सार ॥जय०॥४॥
ब्राह्मणी ए दशमें नाम है, उच्च कुल अवतार।
श्री ब्रह्माणी एक दश में, नाम लिया निस्तार ॥जय०॥५॥
ब्रह्मवादिनी नाम बारमो, सत्य वचन प्रख्यात।
वाणी नाम चतुर्दश कहिये, श्रुत देवी श्री कार।
नाम पनरमो समरण करंता, होये हर्ष अपार ॥जय०॥६॥

षोड़शाङ्गो ए नाम सोलमो, प्रणम्यां पातिक जाय।
प्रातःकाले जे नर जप से, तेहने सदा सहाय ॥जय०॥७॥
इण विध षोड़श नाम उदारा, जपियां जय जयकार।
नेमि विनय युत विनवे वलि वलि,
भूरके सुख श्रीकार ॥ जय० ॥ ८ ॥
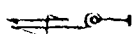
मेरी-भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरिहर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधिन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित उसी में लीन रहो ॥१॥
विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं,
निज-पर के हित-साधन में जो, निश दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ-त्याग की कठिन-तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी-साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करुं,
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करुं ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खू, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं।

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं ॥ ४ ॥
मैत्री-भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्त्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्य भाव रक्खूं मैं उनपर ऐसी परिणति हो जावे ॥ ५ ॥
गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों परजावे ॥ ६ ॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥ ७ ॥
होकर सुख में मग्न न फूलें, दुःख में कभी न घबरावें,
पर्वत-नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावें।
रहे अडोल अकंप निरन्तर यह मन दृढ़तर बन जावें,
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावे ॥ ८ ॥
सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप अभिमान छोड़, जग नित्य-नये मंगल गावें।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,

धर्म निष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर-शब्द, नहीं कोई मुख से कहा करे।
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति-रत रहा करे,
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, निजानन्द में रमा करे ॥११॥
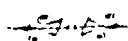
सामायिक स्तवन

हो सत्व पै सखिपना, मुद हो गुणी पे, माध्यस्थ भाव
मम होय विरोधियों पे, दुःखार्त पे अयि दया धन हो
दया ही, हो नाथ कोमल सदा परिणाम मेरे ॥ १ ॥
धारूं क्षमा सुमृदुता (मार्दव) ऋजुता (आर्जव)
सदा में, त्यों सत्य, शोच, प्रिय संयम भी न त्याग,
छोडूं नहीं तप, अकिंचन ब्रह्मचर्य है रत्न राशि दश
लक्षण धर्म मेरा ॥ २ ॥
मैं देव पूजन करूं गुरु भक्ति साधू, स्वाध्याय में
रच सुसंयम आदरूं मैं धारूं प्रभो तप, निरन्तर
दान दूं मैं, षट् कर्म ये नित करूं जबलों गृही हूं ॥ ३ ॥
पाऊं, महा सुख प्रभो, दुख वा उठाऊं, सोऊं
पलंग पर, भूपर ही पडूं वा, सोहे तथापि समता

अति उच्च मेरी, समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ४ ॥

चाहे रहूँ भवन में वन में रहूं, या प्रसाद में बस रहूं
अथवा कुटी में, सोहे तथापि समता अति उच्च मेरी,
समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ५ ॥

सु स्वादु व्यंजन सहस्त्र प्रकार के हो, आहर हो निरस,
या वह भी मिले ना सोहे तथापि समता अति उच्च मेरी,
समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ६ ॥

सिहासन प्रचुर रत्न जड़ा प्रभो हो, किंवा कठोर तर
पत्थर वैठने को, सोहे तथापि समता अति उच्च मेरी,
समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ७ ॥

चाहे चलूं मखमली पग पांवड़ों पे, या तै करूं
विकट कंटक पूर्ण पन्था सोहे तथापि समता अति
उच्च मेरी, समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ८ ॥

सैलून हो, विविध मोटर गाड़ियां हो, हो वग्घियां,
न पदमी कुछ साथ दे या सोहे तथापि समता अति
उच्च मेरी, समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ ९ ॥

मेरी करें भुवन के सब भूप सेवा, या मैं करु भुवन
के जनकी सु सेवा, सोहे तथापि समता अति उच्च
मेरी समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥ १० ॥

श्री देव देव वह इष्ट वियोग होवे, किंवा अनिष्ट
कर योग महान हो वे, सोहे तथापि समता अति उच्च
मेरी, समायिक प्रबल हो मम नाथ ऐसी ॥११॥

समायिक स्तवन को जन जो पढ़ेंगे, संसार के सुख
दुखोदधि को तरेंगे, होंगे कभी न चल मानस धर्म
धारी, श्रीश प्रताप वश सिद्धि उन्हें वरेगी ॥१२॥

(श्री गिरिधर शर्मा 'नवरत्न')

आलोयणा
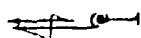
हे श्री नाथजी पाप अलेउं पाछला, केई भांतरा,
दिन रातरा किनो पञ्चेन्द्रिय विनास,
म्हारे गले दीनो फास, खाया घणा मद्य अरु मांस।
दीनानाथजी जोडूं हाथ जी, मुझ मिच्छामी दुक्कड़म् ॥१॥

हे श्री नाथजी प्राण लूटिया छः कायना,
केई जाणने, केई अजाणने में नहीं जाणी पर पीड़ा,
चिथ्या कंथवाने कीड़ा, चाब्या पान सेती बीड़ा।
दीनानाथजी ॥२॥

हे श्री नाथजी वनस्पति तीन जातरी
केई भांतरी, धमकी सांतरी।
छेदिया पत्र फल फूल से क्या गाजर कंद मूल,
खाया भर भर लूण दीनानाथजी ॥३॥

हे श्री नाथजी आचार घाल्यो निज हाथ सुं,
घणी भांति सूं, चीरयो दांत सु ।

माय भरिया मसाला, खाया भर भर प्याला,
आया फुलणियारा जाला ।।दीनानाथजी० ।।४।।
हे ओ नाथजी पाणी अलुच्यो तालब रो,
कुवा बावड़ी रो, नदी नालां रो ।
फोड़ी सरवरीये री पाल, तोड़ी तरवरीयेरी डाल,
वरफ गड़ा दिया गाल ।। दीनानाथजी ।।५।।
हे ओ नाथजी अधर अकासां रो भेलियो,
भर भर मेलियो ऊनो ठण्डो भेलियो ।
दियो अर्थे अनर्थे ढोल, कियो अण छाण्यो अण गोर,
मांय मांडी भैंसा रोल ।। दीनानाथजी० ।।६।।
हे ओ नाथजी माता सूं पुत्र विछोविया (अलग किया)
घणा रोवीया, दूधां धोविया ।
रोस्या नानड़िया सा बाल, पर पेटा दीनी भाल,
खोस्या पंखी डारा माल ।। दीनानाथजी० ।।७।।
हे ओ नाथजी जुं माकड़ ने माखीयां
रोकने राखीयां, रास्ते में नाखीयां ।
तड़के माचा दिया मेल, ऊना पाणी ठेल,
आगे होसी घणी हेल ।। दीनानाथजी० ।।८।।
हे ओ नाथजी सीयाले सिगड़ी करी खीरा भरी,
चवड़े धरी मांय पड़ पड़ मरीया जीव,
पाप करीया निस दिन, वांधी नरकां तणी नींव
।। दीनानाथजी० ।।९।।

हे श्रो नाथ जी ऊनालो बाय विजिया,
फूलविछाविया जल छिड़काविया ।
कीनी बागां मायें गोठ, खाया चुरमा ने रोट,
बांधी पापां तणी पोट ॥ दीनानाथजी० ॥१०॥
हे श्रो नाथजी चोमासे हल हांकिया
बैल भूखा राखीया, चाबुक मारिया फोड़या पृथ्वी केरा पे
मारिया सांप ने सपलेट, दया आणी नहीं धेठ
॥ दीनानाथजी० ॥११॥
हे श्रो नाथ जी जूना नवा बेचीया,
सुलिया संचिया, नहीं देखीया ।
दिया अणसोया ही पोस, ईल्यां मारी दस बीस,
रोसी आगे देइ सीस ।। दीनानाथजी ॥१२॥
हे श्रो नाथजी दूध दही छाछ आछरा,
सरबत दाखरा, केरी पाकरा ।
भले धीरत ने तेल, दिया उघाड़ा ही मेल,
कीड़ीयां आई रेला पेल ॥दीनानाथजी० ॥१३॥
हे श्रो नाथजी कूड़ कपट छल ताकिया,
छाने राखीया नहीं भाखीया ।
मुख सु बोल्यो घनो भूठ, धाड़ो पाड़ी लायो लूट,
जिन्तर मिन्तर बाई मूठ ॥ दीनानाथजी० ॥१४॥
हे श्रो नाथजी पर नारी धन चोरिया,
खेले होलियां, गावे, गेरीया ।

देख्या तमाशा, ने तीज, ताल्यां पीटर हुयो हीज,
गाल्यां गाई घणी रीज ॥ दीनानाथजी० ॥१५॥

हे ओ नाथजी ओगणवाद गुरां तणा, बोल्या घणा,
अण सुवावणा । दुःख दिया मैं अज्ञानी,
निन्दा कीनी छानी छानी,
नहीं धाम्यो अन्न पानी ॥ दीनानाथजी ॥ १६ ॥

हे ओ नाथजी भोजन भली भली भांतरा,
आधी रातरा, खाया सांतरा ।
पीयो अण छाणियो ही पाणी, मनमें करुणा नहीं आणी,
पर पीड़ा नहीं पीछानी ॥दीनानाथजी ॥१७॥

हे ओ नाथजी सासु सोक सवासणी,
पाडोसणी, संताई घणी । मुख सु ं बोल्यो माठी गाल,
रोगी वूढ़ा तपसी वाल, ज्यांरी नहीं करी साल संभाल ।
दीनानाथजी० ॥१८॥

हे ओ नाथजी सुस वरत किया मोटका,
केई छोटका, कर दिया खोटका ।
किया छाने छाने पाप, सो तो देख रया हो आप
म्हारे थेई माय वाप ॥ दीनानाथजी० ॥१९॥

हे ओ नाथजी स्त्री सु ं भांत घलाइया,
गरभ गलाइया, जीव जलाइया ।
मारी जु ंया फोड़ी लीक (लीख) वैठो पापरे नजदीक,
नहीं मानी गुरु की सीख ॥ दीनानाथजी ॥२०॥

हे श्रो नाथजी थापन राखी पारकी,

केई हजार की, सहुकार की । देतां करी सर०

मागन श्रायो गयो नट, गयो समुलोई गिट,

दीनानाथजी० ॥२१॥

हे श्रो नाथजी तप जप संजम शीलरी,

देता दानरी, भणता ज्ञानरी।

दीनी मोटी अन्तराये, ते तो भुगत्यो नहीं जाय,

पड़यो करसे हाय हाय ॥ दीनानाथजी ॥२२॥

हे श्रो नाथजी मात पीता गुरुदेवरो, अविनय कीनो घणो ।

फसीयो चौरासीरे माय,

ज्यांसु बान्ध्यो वैर भाव, खमावो चित लाय,

श्राया निर्मल भाव ॥ दीनानाथजी० ॥२३॥

हे श्रो नाथजी साल करीने संभालज्यो,

मती विसार जो, पार उतारजो ।

समत १९ ने ६२, ज्यांसु मती करो नष्ट

म्हाने दर्शन देश्रो झट ॥ दीनानाथजी० ॥२४॥

हे श्रो नाथजी श्रलोयणा इम कीजिये, कर्म छोजीये,

मिच्छामी दुक्कड़म् दीजिये । जेपुर माहीं जडाव,

ज्यारा निर्मल, भाव, खमा वोनी चित लाय,

दीनानाथजी जोड़ूं हाथजी, मानो वातजी,

ते मुझ मिच्छामि दुक्कड़म् ॥ दीनानाथजी॥२५॥
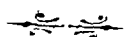
आत्मोपदेश

(राग–सोहणी)

करता नहीं कछु सोच अब, मानुष हुआ तो क्या हुआ।
॥करता०॥

मोती वा पन्ना हीरला, पुखराज नीलम चुनिया।
अपना हीरा देखा नहीं, जौहरी हुआ तो क्या हुआ।
॥करता० ॥१॥

सोना सुहागा आग से, देख खोट सगरी जारता।
अपना सुवर्ण शोधा नहीं, सर्राफ हुआ तो क्या हुआ।
॥करता० ॥२॥

चांदी वा सोना बेचता, हुण्डी बजाजी देखता।
परलोक को देखा नहीं, व्यापारी हुआ तो क्या हुआ।
॥करता० ॥३॥

मुद्दइ मुद्दाला देखता, कानून किताबें खोलता।
अपना गुन्हा देखा नहीं, मुन्शिफ हुआ तो क्या हुआ।
॥करता० ॥४॥

माता-पिता सुत बहिना भाई, और तिरिया जमाई रे।
निज रूप आतम की बिना वल्लभ हुआ तो क्या हुआ।
॥ करता० ॥५॥

अध्यात्मिक भजन

काया का पिंजरा डोले, एक सांस का पंछी बोले ॥ टेर ॥
तन नगरी मन है मन्दिर, परमात्मा जिसके अन्दर ।
दो नैन हैं पाक समुंदर, श्रो पापी पाप को धोले ॥ १ ॥
आने की शहादत जाना, जाने से क्या पछताना ।
दुनियां है मुसाफिर खाना, अब जाग मुसाफिर भोले ॥ २ ॥
नित चलते हैं शोक के झोले, अब सोच विचार तूं करले ।
दिन रात तराजू के पल्ले, जो नेकी बदी को तोले ॥ ३ ॥
मां बाप पति पत्नी का, कोई भी नहीं है किसी का ।
झगड़ा यह जीते जी का, क्यों मित्र भेद को खोले ॥ ४ ॥

श्री धन्ना शालभद्रजी को स्तवन

रङ्गत— [महलां में बैठी हो राणी कमलावती]

सूरां ने लागे वचन जो तजणो कायर ने लागे नहीं कोय,
सांभल हो सुरता ॥ सूरा० ॥ टेर ॥
नगरी तो राजगरीना वासिया सेठ धन्नो जी जुग में सार,
पुरव पुन्य सुं बहु रिध पाविया आठ नारयांना भर्तार ।
सांभल ॥ सूरा० ॥१॥
क दिन धनजी हो बैठा पाटले, स्नान करे छे तिणवार ।

आठों ही नारियां मिलकर प्रेम सूं, कूड़ रही जलनी धार।
सांभल ॥ सूरा० ॥२॥

सुभद्रा हो नारी चौथी तेहनी, मनमें थाई छे दिलगीर।
आंसु तो निकल्या तेना नेण सुं, कामण क्यों थाई छे उदास,
शंका मत राखो मुझ आगले, कारण कहोनी वीमास।
सांभल ॥ सूरा० ॥३॥

कामण कहे हो काया माहेरा, वीरा ने चढ़ियो वैराग।
एक एक नारी हो नित की पीर हरे, संजम लेवा की रही छे लाग
सांभल ॥ सूरा० ॥४॥

धनजी कहे हो भोली बावरी, कायर दीसे छे थांरों वीर,
संजम लेणो मनमें धारियो फिर क्यों करणि या ढील।
सांभल ॥ सूरा० ॥५॥

कामण कहे हो कंथा माहेरा, मुख से बनाओ विकट बात।
यो सुख छोड़ी ने बाजो सूरमा, जदी जाणागा प्रीतम सांच।
सांभल ॥सूरा० ॥६॥

इतरा में धनजी उठीने बोलिया, कामण रेज्यो म्हासूं दूर।
संजम लेवांगा अणि अवसरे, जदी वाजांगा जग में सूर।
सांभल ॥ सूरा० ॥७॥

वे कर जोड़ी ने सुन्दर वीनवे, कियो हांसी के वश बोल।
हांसी की सांची ना कीजे साहेबा, हिवड़े विचारी ने बाहर खोल
सांभल ॥ सूरा० ॥८॥

संजम लेणो हा प्रीतम सोयलो, चलणो कठिन विचार।

बाइस परीसा सेरणा दोयला, ममता मारी ने समता धार।
सांभल || सूरा० ||६||

उत्तर पर उत्तर हुआ अति घरणां, आया साला रे भवन उछाव।
संजम दोई साथे आदरा उतरोनी कायर नीचे आव।
सांभल || सूरा० ||१०||

साला बन्दोई संजम आदर्यो, वीर जिनंदजी के पास।
साल भदरजी सर्वार्थ सिद्ध गया, धन्नोजी शिवपुर वास।
सांभल || सूरा० ||११||

समत उगरणीसे साल इकसठे चितोड़ कियो रे चौमास।
मुनि नंदलाल तरणा शिष्य गाविया मन वांछित फलेगा मुझ आ
साभल हो सूरता ||१२||
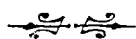
दुनियाना महान सिकंदर शहेन शाहना मरण वखतना फरमाने

[राग भैरवी–गजल]

मारा मरण वखते बधी, मिल्कत अहीं पथरावजो,
मारी ननामी साथ, कब्रस्थानमां पण लावजो || १ ||
जे बाहु बलथी मेलव्यु ते, भोगवी पण ना शक्यो,
अब जोनी मिल्कत आपतां पण, ए सिकंदर ना बच्यो || २ ||
मारु मरण थातां बधा, हथियार लश्कर लावजो,
पाछल रहे मृत देह, आगल सर्वने दोड़ावजो || ३ ||

आखा जगत ने जीतनारूं, सैन्य पण रडतुं रहयुं,
त्रिकाल नरदल भूपालने, नहि कालथी छोडी शक्यु ॥ ४ ॥
मारा वधा वैधो, हकीमोने आही बोलावजो,
मारी ननामी ए ज, वैदोने खभे उपडावजो ॥ ५ ॥
दर्दि ओना दर्दने, दफनावरूं कोण छे ?
दोरी तुटी आयुष्यनी, त्यां सांध नारू कोण छे ? ॥ ६ ॥
बांधी मुठीने राखतां, जीवो जगतमां आवतां,
ने खाली हाथे आ जगतना जीवो सहु चाल्या जता ॥ ७ ॥
योवन फना, जीवन फना जरने जगत पण छे फना,
परलोकमा परिणाम फलशे, पुन्य के पापो तणा ॥ ८ ॥

वैराग्यप्रद भजन (दोहा)

(राग–भैरवी ताल कहरवा)
(तर्ज—आ वावासारी लाड़ली)

कूद पराई पीड़ में, कोण आपरो जाण ।
दिन ऊगे संध्या पडे, रीत जगतरी जाण ॥१॥
आ चादर थारे कर्मोरी, काली पड़ जासीरे ।
हंस हंस क्यूं बान्धे पाप, इणो ने कठे छुपासीरे ॥ टेर ॥
ब्रह्मचर्य ने छोड़ आज क्युं, व्यभिचार में डोलेरे,
असली रत्न ने छोड़ अरे, पत्थर में तुं क्युं मालेरे, ।
हिवड़े की खिड़की खोल नहीं तो, दुखड़ो पासीरे,
आ चादर० ॥२॥

सब सु मीठो बोल जगत में, कड़वो तु ं क्यु ं बोलेरे,
अमृत के प्याले में तु ं क्यु ं, बू ंद जहर की घोलेरे ॥
भलो बुरो करीयो ड़ो थारे, आड़ो आसीरे, आ चादर० ॥३॥
धर्म कर्म रो भरीयो खजानो, खर्च कीया नहीं खुटेरे,
मिटे कर्म जंजाल ओ भगड़ो, जन्म मरण रो छुटेरे।
सुण वीर मंडल री बात त्याग सु ं तू ं सुख पासी रे।
आ चादर कर्मोंरी काली पड़ जासी रे ॥४॥

(उपदेशक भजन मारवाड़ी राग में)

कांई कियो कांई कियो कांई कियो रे
नाहीं लियो नाहीं लियो नाहीं लियो रे
विरथा ही जनम गंवाय दियोरे
प्रभु रे भजन लावो नाहीं लियो रे
आडा टेढा पेच लगावे मुछ्‌यां बल घाले
जवानी रा जोश माहीं टेढो टेढो चाले
आखिर जवानी थां ने धोखो दियो रे
विरथा ही जनम गंवाय दियो रे ॥ कांई० ॥
जवानी रा जोश माही रातयू ं निंद उड़ावे,
दया धरम रो काम पड़े तो भट नट जावे,
आखिर जवानी थाने धोखो दियो रे,
विरथा ही जनम गंवाय दियोरे ॥ कांई० ॥

एक कवि का बनाया हुवा–संसार की असारता दिखलाने वाला पद

(रागिनी काफी)

कोई अजब तमाशा देखा दुनिया बीच, ए ।। टेर ।।

एकन के घर मंगल गावे, पूरे मन की आशा,

एक वियोग सहित दुःख रोवे, भर भर नैन निराशा रे ।

|| कोई० ।। १ ।।

तेज तुरंग पर चढ़ चलते पहने मल मल खासा,

रंक भये नंगे पग डोले, कोई न दिये रे दिलासो रे ।

|| कोई० || २ ||

प्रातःकाल तखत पर बैठे, चाकर वक्त हुलासा,

ठीक दे फेरी मुदत पहुंचो, जंगल हो गया वासारे ।

|| कोई० ।। ३ ।।

कोडी कोडी कर धन जोड़ा, जोड़ा लाख पचासा,

अंत समय चलने की बारी, साथ न चले एक मासा रे ।

।। कोई० || ४ ।।

तन धन जोवन थीर नहीं जग में, ज्यूं जल बीच पतासा,

भूदर इनका मान किया जिन्हें, छुटा उनका घर वासारे ।

|| कोई० || ५ ||

॥ श्री ॥

श्री तीर्थंकर का शासन

ॐ ह्रीं अर्हं नमः

श्री तीर्थंकर का शासन (समाज)

[१] इस संसार सागर में जो खुद (स्वयम्) तरते हैं और दूसरों को तराने में मंगलमय निमित (मददगार) होते हैं वे तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

"तिन्नाणं, तारयाणं" इस पद से शकेन्द्र महाराज स्तवन करते हैं साधु साध्वी और श्रावक श्राविका भी नमोथुणं के पाठ से स्तुति करते हैं (कीर्तन करते हैं) हे प्रभो ! आप खुद तरे हो और दूसरों को भी तारणे वाले हो।

[२] तीर्थङ्कर भगवान के शासन में नाव के छिद्रों को आश्रव तत्व कहते हैं (पाणी की ओपमा अजीव तत्व को दी है) नाव में पाणी भरणा और उसे डुबाने माडंना यह बंध तत्व हैं नाव में बैठे हुए अपन जीव तत्व है छिद्रों (छेदों) को बन्द करना वो संवर तत्व है भरे हुवे पाणी को निकालना वह निर्जरा तत्व है और नाव को किनारे पहुंचाना वो मोक्ष तत्व है किनारे के तरफ की अनुकूल हवा पुण्य तत्व है और प्रतिकूल हवा जो नाव को भंवर कीतरफ ले जाती है वह पाप तत्व है इण नव तत्वों के आधार स्थापा हुवा शासन ही तीर्थङ्कर का शासन कहलाता है और जो पालन करते हैं ऐसे साधु साध्वी, श्रावक श्राविका

चतुर्विध संघ कहलाता है यह जगम तीर्थ कहलाता है यह जगम तीर्थ स्वपर का कल्याण करने में समर्थ होता है और नित्य सब कष्टों को नष्ट कर देता है एक समर्थ आचार्य महाराज का वचन है कि–

"सर्वयदा मंतकर निरंतं, सर्वोदय तीर्थ मिदं तवैव"

हे तीर्थङ्कर प्रभु आपका ही ऐसा तीर्थ है के जो सब विपत्तिओं का नाश करने के लिये सर्वदा (हमेशा) सर्वथा (सब समय) सर्वत्र (सब जगह) सबका उदय के लिये प्रवर्ता है।

[३] तीर्थङ्कर भगवान का शासन जिन शासन के नाम से प्रसिद्ध है जिसको राग (स्नेह–प्रेम) हो वह दोष देख सकता नहीं और जिसको द्वेष होता है उसको गुण दिखाता नहीं गुण दोष का ठीक ठीक विवेचन केवल निग्रंथ निष्पक्ष वितराग प्रभु हैं वो ही कर सकते हैं वितराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी है उन का स्थापा हुवा बताया हुवा धर्म अर्थात् तीर्थङ्कर का शासन "जिन धर्म-जैन धर्म" के नाम से प्रसिद्ध है और जो इस धर्म के अनुयायी हैं (मानने वाले हैं) उन को "जैन" कहने में आता है "जन" शब्द पर दो मात्राऔर चढती है जब "जैन" होता है जो "जन" में ज्ञान दर्शन की मात्रा प्रविष्ट होती है उनको जैन कहते हैं और "ई" कारको चारित्र शक्ति पूर्ण होते ही वे "जिन" हो जाते हैं जैसे "शव" में "इ"

कार मिलने से "शिव" (निरुपद्रव, मुक्त स्वरूप) हो जाता है उसी तरह "जन" में ज्ञान दर्शन और चारित्र की शक्ति प्रगट होते ही वो "जिन" (राग द्वेष ने जितनारा) कहलाते हैं जिन और जिनेन्द्र का खुलासा निम्नोक्त है।

[१] सामान्य जिन–जिन्होंने ज्ञान वरणीय, दर्शना वरणीय, मोहनीय, और अन्तराय यह चार घाती कर्मो को क्षय (नष्ट) कर दिये हैं वे (सब) सामान्य जिन हैं।

[२] जिनेन्द्र–जिन्होंने इन चार घाति कर्मो का नाश तो किया ही है मगर उन्होंने पूर्व जन्म में जिस क्रिया द्वारा तीर्थङ्कर पद की प्राप्ती होती है वैसी क्रिया अरिहन्त भक्ति इत्यादि वीस धर्म बोलो की उत्कृष्ट भाव से आराधना करके तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन किया था वो उन्ही के इस भव में उदय आया जिससे वे "जिनेन्द्र" कहलाये।

जैसे देवलोक में सामानिक देवों और इन्द्र महाराज आयुष्यादि में समान होते हुये भी सामानिक देवों एश्वर्य आदि में हिन होते हैं और इन्द्र महाराज एश्वर्य और सता आदि में विशेष होते हैं जिससे वे "इन्द्र" कहलाते हैं उसी तरह सामान्य जिन और जिनेन्द्रों केवल ज्ञान आदि गुणों में समान हैं परन्तु सामान्य जिनो के पास 'दूसरे अनेक जीवों को धर्म प्राप्ति होय' ऐसा धर्म चक्रवर्तिपणा का एश्वर्य नहीं और जिनेन्द्रों के पास संख्य असंख्य जीवों को धर्म प्राप्ति होय जैसा

धर्म चक्रवर्तिपणा का एश्वर्य है 'इसलिये वे जिनेन्द्र' कहलाते हैं तीर्थङ्कर कहलाते हैं तीर्थङ्कर तीर्थ की स्थापना करते हैं जिससे सब जिनों के स्वामी तरीके पहचाने जाते हैं जिससे उन्हों को (तीर्थङ्करों को) जिनेन्द्र कहते हैं।

ऐसे जिनेन्द्र प्रभु अनन्त हो गये हैं और बीस विहरमान वर्तमान में हैं वो महा विदेह क्षेत्रों में विचरते हैं और भविष्य काल में अनन्त होने वाले हैं तीर्थङ्कर प्रभु तीर्थ की स्थापना करते हैं मगर वे कोई नवीन धर्म का निर्वाण करते नहीं सिर्फ धर्म का सदुपयोग के लिये समाज का (शासन का) निर्माण (स्थापना) करते हैं जो सर्व वृति (साधु धर्म) और देश वृति (श्रावक धर्म) संघ कहलाता है।

धर्म तो अनादि है जिसका निर्माण कोई करता नहीं जिस तरह कोई पाणी को बनाता नहीं और उसके उपयोग के लिये मिट्टी निकाल कर जलाशय का निर्माण करता है उसी तरह तीर्थङ्कर महा प्रभु भी कर्मों का कचरा निकाल कर निर्मल धर्म का सदुपयोग के लिये तीर्थ का निर्माण करते हैं।

[४] उस तीर्थ के संघ में उत्तम महाजनों को, सज्जन तथा श्रेष्ठ कहने में आते हैं (लोक भाषा में

श्रेष्ठ को सेठ भी कहते हैं) इससे विपरीत दुष्ट जन, दुष्ट बल से शैतान कहलाते हैं वो दूसरों पर अत्याचार करते हैं दूसरों को रुलाते हैं (तड़फाते हैं व्याकुल करते हैं) वे दुर्बल दुष्ट जन कहलाते हैं। १. जो दुःख में रोते हैं घबराते हैं व्याकुल होते हैं वे हैवान, निर्बल और कनिष्ठ कहलाते हैं। २. जो रोते के आंसु पोंछे वे श्रेष्ठ सबल इन्सान कहलाते हैं। ३. जो रौद्र और आर्त ध्यान छोड़कर धर्म ध्यान से शान्त भाव से अत्याचारों का प्रतिकार करते हैं वे खुद अत्याचार करते नहीं और दूसरों को अत्याचारी बलण का शिकार पण बनते नहीं।

[५] तीर्थङ्कर भगवान प्रबल शुक्ल ध्यानी होते हैं उन्होंके निर्मल उपदेश का प्रभाव इतना व्यापक होता है कि पशु पंखी भी उन्हों की धर्म सभा में जन्म, जात वैर भूल कर व्रत ग्रहण कर सकते हैं उन्होंने (तिर्थङ्करों ने)

तब तक कष्ट नष्ट नहीं होता है तीर्थङ्कर अरिहन्तों के कषाय नष्ट हो गए है इसलिये अविनाशी अंग प्राप्त करने के लिये अकषायी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये।

[६] भक्त याने विभक्त न रहना, विभक्त का अर्थ अलग रहना और भक्त का अर्थ लगा हुवा रहना जैसे इन्जन से जुड़ा हुवा लगा हुवा डब्बा डब्बा इन्जन से अलग न रहकर इन्जन के साथ जुड़ा हुवा रहे तो लक्ष्य स्थान तक पहुंच जाता है उसी तरह अपने जीवन का डब्बा भी तीर्थङ्कर के शासन में जुड़ा हुवा रहे अर्थात् अलग न रहे तो सिद्धि स्थान क्यों न पहुंचे ? जरूर पहुंचे।

हे चेतन ! अठारह दोष रहित जिनेश्वर अरिहन्त परमात्मा के उपर तथा उन्हों के फरमाये हुए मार्ग पर द्रढ़ श्रद्धा रख कर उन्हों के बताये हुये मार्ग मुजब चलने की भावना सहित उन्हों के बताये हुऐ मार्ग पर चलने की कौशिश तन मन वचन से करना यही उन्हों से जुड़ा हुवा याने लगा हुवा रहना (भक्त) कहलाता है।

[७] हे आत्मा ! अकषायी अठारह दोष रहित तीर्थङ्कर अरिहन्त परमात्मा ही तेरे परम इष्ट प्रभु (शुद्ध देव) हैं जिन्हों का नित्य स्मरण करने के लिये पंच परमेष्टी नवकार महामन्त्र है वो ही तेरा परम इष्ट महामन्त्र है पंच परमेष्टी महामन्त्र जिन शासन में उत्तम मंत्र के तरीके प्रसिद्ध हैं वो जिनेश्वरों

के फरमाया हुवा पक्षपात रहित मन्त्र है जिसकी महीमा अपरमपार है उसको नमस्कार मन्त्र भी कहने में आता है अहंकार दुःख का मूल है इसलिये नमस्कार सुख का मूल कहलाता है तु भी विवेक से परमेष्टी मन्त्र का उच्चारण कर (जाप जप, ध्यान स्मरण कर)।

१. णमो अरिहन्ताणं (अरिहतों को नमस्कार) २. णमो सिद्धाणं (सिद्धों को नमस्कार) ३. णमो आय-रियाणं (आचार्यो को नमस्कार) ४. णमो उवज्झायणं (उपाध्यायों को नमस्कार) ५. णमो लोये सव्व साहूणं (लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार) ६. ऐसो पंच नमोक्कारों ७. सव्व पावप्पणासणो, ८. मंगलाणंच सव्वोसिं ९. पढमं हवई मंगलं (यह पांच नमस्कार सब पापों का नाश करते हैं और सब मंगलों में प्रथम मंगल कहलाते हैं)।

इन पांच पदों के साथ १. दर्शन २. ज्ञान ३. चारित्र ४. तप । यह चार पद बढ़ाने से नव पद होते हैं। ६. नमो दंसणस्य (दर्शन को नमस्कार) ७. नमो नाणस्स (ज्ञान को नमस्कार) ८. नमो चारित्तस्स (चरित्र ने नमस्कार) ९. नमो तपस्स (तप ने नमस्कार)।

अरिहन्त पद के स्मरण से क्रोध शान्त हो जाता है कारण के अरिहन्त का अर्थ पूर्ण निर्वैर होता है अपने धर्म का यह सिद्धांत है के, फल में ही बीज रहा हुवा है,

इसलिये जो दुःख रूप फल अपणे हृदय में प्रगटा है वो बीज पण दूसरों में नहीं इसलिये कोई को वैरी (दुशमन) नहीं मानना। ऐसा जब "अरि" (शत्रु) भाव का नष्ट (हनन) होता है तब सब जीवों प्रति मैत्री (मित्र) भाव जागता है और दूसरों पर से क्रोध भाव रुक (ठहर) जाता है।

सिद्ध भगवान के स्मरण से मान उड़ जाता है कारण वे ही अमर हैं तीर्थङ्कर प्रभु को भी मरण स्वीकार करना पड़ता है तो अपना मान कहां चल सकता है।

आचार्यों, उपाध्यायों और सब साधुओं का स्मरण से माया (कपट) रहती नहीं जब अपरिग्रही निग्रंथ पूज्य मुनिवरों का दर्शन होता है जब मन की गांठ खुल जाती है निश्च्छल, सरल, अकिंचन आचार्यों को, उपाध्यायों को, और सर्व साधुओं को देख कर कपट करने की इच्छा मर जाणा यह स्वाभिक है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप रूप धर्म तत्व का स्मरण से लोभ का लय हो जाता है कारण के जब आत्मा का स्वभाव का अविनाशी आनन्द निखालस केवल्य रूप में पहिचान हो जाती है तब बहार के विषयों की तृष्णा क्यों नहीं रुक सकती है।

संक्षिप्त में मन को निर्मल करने के लिये अरिहन्तों

का (उपदेश) उपकार है बुद्धि को निश्चल करने के लिये सिद्धों का आधार है सिद्धों का स्वदेश है वो चंचल नहीं अरिहन्त पीछा जन्म नहीं लेते और सिद्ध मरते नहीं (अरिहन्त सशरीरी हैं और सिद्ध अशरीरी हैं)।

अरिहन्त निर्मल होते हैं और सिद्ध निश्चल होते है जैसा घ्यान वैसा स्थान अहंकार को सरल करने के लिये आचार्यों का (संदेश) आचार है विकल चित को सकल करने के लिये यागो व्याकुल चित को व्यापक करने के लिये उपाध्यायों का विचार है आगम निर्देश है निर्बल को सबल करने के लिये सर्व साधुओं का संस्कार (है) मोक्ष उद्देश्य है उसी तरह नकल को असल करने के लिये सम्यग दृष्टि का व्यवहार हैं असल को अक्कल करने के लिये सम्यक ज्ञानी का सुधार है अक्कल को अमल करने के लिये सम्यक चारित्र का विहार है अमल को अरल करने के लिये सम्यक तप का स्वीकार है।

इस प्रकार तीर्थङ्कर का शासन सब साधनों के प्रति पादन करता है दर्शन और ज्ञान की आंखों तथा चारित्र और तप की पांखों से ही प्राण पंखेरु निर्दिष्ट स्थान प्रत्ये के अच्छी तरह गमन कर सकता है।

प्रश्न – अरिहन्तों से सिद्धों का पद उच्चा है फिर क्यों नवकार मन्त्र में पहिले अरिहन्तो को नमस्कार

किया जाता है ?

उत्तर – नमस्कार का क्रम व्यवहार दृष्टि से है श्री अरिहन्त भगवान शरीर के व्यवहार में बिराजमान हैं इसलिये उन्हों का अस्तित्व मात्र से ही (प्रभु दर्शन से) कल्याण मार्ग की प्रेरणा मिलती है और अरिहन्त भगवान न होय तो अपने को सिद्धों का परिचय कौन देवें ? जलाशय न होय तो जल कहां से मिले ? अरिहन्त शरण नहीं होय तो सिद्धना स्वरुप की उपलब्धि कौन करावे ? अरिहन्त भगवान अपने प्रत्यक्ष व्यवहार में आदर्श होने से प्रथम वंदनीय हैं इसलिये अरिहन्तों को प्रथम नमस्कार किया जाता हैं।

प्रश्न–अर्हंत भगवान संसारी हैं के मुक्त ?

उत्तर–अर्हंत भगवान पण संसारीज हैं परन्तु अपने में और उन्हों में इतनाज फर्क है के अपने में संसार है और उन्हों में संसार नहीं अपन संसार सरोवर में हैं (और संसार सरोवर में हैं)।

अपने जीव की नाव में आश्रव के छेद खुले हैं इसलिये कर्मों का पाणी प्रवेश होता रहता है और उन्हों के मिथ्यात्व अवृत, प्रमाद और कषायों के आश्रव छेद (छिद्र) बंद हो गये हैं इसलिये कर्मों का पाणी प्रविष्ट हो सकता नहीं हा एक शुभ योग का है सो जिस तरह

बिना छेद की मजबूत नाव को पाणी (स्पर्श) छूता रहता है मगर नाव डूब सकती नहीं उसी तरह अर्हंत भगवान के शुभ योग होते हुये भी उन्हों के जीवन की नाव डूब सकती नहीं बल्कि दूसरों को तारने में पण उपयोगी होती है उसी तरह अपने भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि अपनी जीवन नाव संसार सरोवर के जल में भले तिरे मगर उसमें पाणी को प्रवेश नहीं होने देना चाहिये ।

पुण्य तत्व का प्रभाव है के आश्रव और बंध को शुभ बना देता है जिससे दूसरों को उपयोगी होता है पाप तत्व परहित का विरोधी है और आश्रव तत्व स्वहित का विरोधी है उसी तरह पुण्य तत्व परोपकारी है और संवर तत्व आत्मोपकारी है जितना जितना आश्रव निरोध होता है उतना उतना आनन्द का मार्ग विकसित होता है।

समझो के अपने किसी के यहां (भोजन) जीमणे के लिये गये जीमणे के पदार्थ जड़ हैं अर्थात अजीव तत्व हैं और जो जानता है वह जीव तत्व हैं जीमणे से जो शाता होती है वह पुण्य का फल है और अस्वस्थ अवस्था में जो असाता होती हैं वह पाप का फल है वारंवार जीमणे की इच्छा करना यह आश्रव तत्व हैं उसे रोकना संवर तत्व है इच्छा छूट जाती है वह मोक्ष तत्व है।

और इच्छा रह जाती है वह बंध तत्व है।

प्रश्न—आचार्य और उपाध्यायों में क्या अन्तर है ?

उत्तर—आचार्य महाराज अरिहन्त के प्रतिनिधि हैं और उपाध्याय महाराज सिद्धों के प्रतिनिधि हैं।

आचार्य पद से संघ के आचार और व्यवहार पर अनुशासन होता है वे खुद उत्तम आचरण करते हैं और उपाध्याय महाराजों से शास्त्रों का पठन-पाठन कराने के लिए नियुक्त करते हैं। विचारों की अपेक्षा आचारों का महत्व विशेष है इसलिए पहिले आचार्यों को नमस्कार किया जाता है जिन नहीं मगर जिन सरीखे केवली नहीं मगर केवली सरीखे (माफक) ऐसे महान ज्ञानी और विचारों का खजाना (भंडार) है जो उपाध्याय जो महाराज होते हैं वे भी आचार्यों के चरणों में नमन करते हैं। चारित्र ही वंदनीय हैं। मस्तक का अङ्ग उत्तम होते हुवे भी मस्तक की शोभा चरणों में झुक जाने में ही मस्तक की शोभा है।

प्रश्न—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को किसलिए वंदन किया जाता है।

उत्तर—गुण और गुणी में अभेद की अपेक्षा भी है पंच परमेष्टी के गुण रूप दर्शनादि को भी नमन करने में आता है अर्हंत और सिद्ध ए दो पद देव (सुदेव) कहलाते हैं आचार्य उपाध्याय साधु ए तीन पद गुरु कहलाते है और दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा तप ए चार पद धर्म के नाम से

पहचाने जाते हैं अर्हंत देव और निग्रन्थ गुरु को भी जो नमस्कार करने में आता है उसका कारण यहीज है कि वे धर्म तत्व के मूर्तिमंत है धर्म वगैर वे भी पूज्य कहलाते नहीं (वे धर्मतत्व के मूर्तिमंत हैं जिससे उन्हों को नमस्कार करने में आता है।

प्रश्न---ज्ञान और चारित्र में विशेष महत्त्वपूर्ण किसे कह सकते हैं?

उत्तर---व्यवहार में चारित्र धर्म और निश्चय में ज्ञान धर्म श्रेष्ठ है निश्चय वग़ैर व्यवहार अशुद्ध कहलाता है और व्यवहार वगैर निश्चय प्रगट नहीं होता दोनों का आपस में अन्योन्य संवंध है व्यवहार और निश्चय (उदाहरण) रेल के दो चौले जैसे है जहां से शुरू होते हैं वहां से लगाकर लक्ष स्थान तक दोनों चीले शामिल (भेला) नहीं होते धर्म की गाड़ी उन्हों से अड़ी (अटकी) लगी चलती है समयक दर्शन की टिकट जरूरी है जो आचार्य देते हैं और उपाध्याय तपासते हैं (चेक करते हैं) सर्व साधुजी महाराज पहिले दर्जे के मुसाफिर हैं श्रावक श्राविकाओं दुसरे दर्जे की मुसाफिर है और सम्यक दृष्टियों तीसरे (थर्ड) क्लास (दर्जे) के मुसाफिर (यात्री) कहलाते हैं हैं तीर्थङ्कर का तीर्थ स्टेशन समझना और वीतराग प्रभु (उदाहरण) स्टेशन मास्टर और शास्त्र सरकारी नियम

समान है जो चारित्र धर्म का विधान करने वाला है। जो तीर्थङ्कर के शासन को विधान मान कर मनुष्य जन्म के जंकशन से जहां जाने की इच्छे वहां जा सकता है।

ऊपर बताये हुवे दो देव अरिहन्त, सिद्ध और तीन गुरु आचार्य, उपाध्याय, साधु, और चार धर्म दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप इन नव पदों के व्यवहार से आराधना और अंतर दृष्टि से साधना करके ही अन्तिम साध्य की सिद्धी कर सकता है।

जीव तत्व

जीव तत्व :—जीव उसे कहते हैं, जो जीवे जिसमें चेतना हो अथवा जिसमें प्राण हो। पांच इन्द्रिय, तीन बल (मन बल, वचन बल, काय बल) आयु और श्वासोच्छ्वास। ये दस द्रव्य प्राण तथा ज्ञान दर्शन ये भाव प्राण हैं। जिसमें ये पाये जाते हैं वे जीव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य, देव, पशु पक्षी वगैरह।

१. एक इन्द्रिय जीव में स्पर्शन इन्द्रिय, आयु, कायबल और श्वासोच्छ्वास, ये चार प्राण होते हैं। दो इन्द्रिय जीव में रसना (जिव्हा) इन्द्रिय और वचन बल मिलाकर छः प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय जीव में नासिका (नाक) इन्द्रिव बड़कर सात प्राण हैं। चार इन्द्रिय जीव में चक्षु

(आंख) इन्द्रिय बढ़कर आठ प्राण हैं। पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव में मन मिलाकर पूरे दस प्राण होते हैं (इसका कथन विस्तार से अन्य ग्रन्थों से और गुरू गम से जीवों के ५६३ भेद वगैरे की विस्तार सहित जानकारी करें)।
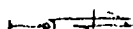
अजीव तत्व

अजीव तत्व -- आजीव तत्व उसे कहते हैं जिसमें चेतना गुण न हो अथवा जिसमें कोई प्राण न हो जैसे लकड़ी वगैरह।

अजीव तत्व का स्वरूप -- जीव का प्रतिपक्षी तत्व अजीव है। वह जड़ अर्थात् चेतना से हीन, अकर्ता, अभोक्ता अनादि, अनन्त सदा शाश्वत हैं। वह सदा काल निर्जीव रहने से अजीव कहलाता है।

(विस्तार अन्य ग्रन्थों से जाने)
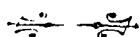
पुण्य तत्व

जिन कर्म प्रकृतियों का फल सुख रूप परिणमता है उन्हें पुण्य प्रकृति कहते हैं। पुण्य प्रकृतियों के उदय से जीवों को इष्ट वस्तु सुख सामग्री और धर्म की सामग्री प्राप्त

होती है। पुण्य उपार्जन करना सरल नहीं हैं। पुदगलों की ममता त्यागे बिना, गुणज्ञ हुए बिना, आत्मा को वश में करके योगों को शुभ कार्य में लगाये बिना, दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानकर उसे दूर करने की भावना और प्रवृति किये बिना पुण्य का उपार्जन नहीं होता।

पुण्य का बन्ध नौ प्रकार से होता है (१) अन्न का दान करने से, (२) पानी का दान करने से, (३) पात्र आदि देने से, (४) मकान-स्थान देने से, (५) वस्त्र दान करने से, (६) मन से दूसरों की भलाई चाहने से, (७) वचन से गुणी जनों का कीर्तन करने से और सुख दाता वचन बोलने से, (८) शरीर से दूसरों की वेयावच्च करने से, पराया दुःख दूर करने से, जीवों को साता उपजाने से, (९) योग्य पात्र को नमस्कार करने से और सबके साथ विनम्र व्यवहार करने से।

यह नौ प्रकार से बांधे हुए पुण्य के फल ४२ प्रकार से भोगे जाते हैं।

पुण्य के फल से पंचेन्द्रिय जाति मनुष्य शरीर, वज्र ऋषभनाराच संहनन आदि मोक्ष की सामग्री पुण्य से ही प्राप्त होती है।

पाप तत्व

पाप का फल कटुक होता है। पाप करना तो सरल है मगर उसका फल भोगना बड़ा कठिन होता है। अठारह प्रकार से पाप का बन्ध होता है। वह इस प्रकार हैं :—

१. प्राणातिपात (हिंसा), २. मृषावाद (झूठ बोलना), ३. अदत्तादान, (चोरी), ४. मैथुन (स्त्री संसर्ग), ५. परिग्रह (धन आदि का संग्रह और ममत्व), ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२. कलह, १३ अभ्याख्यान दूसरे पर मिथ्या दोषारोपन करना, १४. पैशुन्य—चुगली खाना, १५. परपरिवाद-निन्दा, १६. रति-अरति (भोगों में प्रीति और संयम में अप्रीति,) १७. माया मृषा कपट सहित झूठ बोलना, १८. मिथ्या दर्शन शल्य (असत्य मत की श्रद्धा होना)।

इन अठारह दोषों का सेवन करने से पाप का बंध होता है। इन अठारह पापों के अशुभ बंध का दुःखदायी फल ८२ प्रकार से कष्ट भोगना पड़ता है।
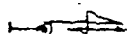
आस्रव तत्व

आस्रव—आस्रव बंध के कारण को कहते हैं। इसके दो भेद हैं :—१. भावास्रव, २. द्रव्यास्रव। जैसे किसी नाव में कोई छेद हो जाय और उसमें से उस नाव में पानी आने लगे, इसी प्रकार आत्मा के जिन भावों से कर्म आते हैं उन्हें भावास्राव कहते हैं और शुभ अशुभ पुद्गल के परमाणुओं को द्रव्यास्रव कहते हैं। आस्रव के मुख्य ४ भेद हैं:—१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. कषाय, ४. योग इन्हीं चार खास कारणों से कर्मों का आस्रव होता है।

१. मिथ्यात्व—संसार की सब वस्तुओं से जो अपनी आत्मा से अलग है राग और द्वेष छोड़कर केवल अपनी शुद्ध आत्मा के अनुभव में निश्चल करने को सम्यक्त्व कहते हैं। यही आत्मा का असली भाव है, इससे उल्टे भाव को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व की वजह से संसारी जीव में तरह तरह के भाव पैदा होते हैं और इसीसे मिथ्यात्व कर्म बन्ध का कारण है। इसके ५ भेद हैं :— १. एकान्त, (वस्तु में रहने वाले अनेक गुणों का विचार न करके उसका एक रूप श्रद्धान करना एकान्त मिथ्यात्व है), २. विपरित (उल्टा श्रद्धान करना विपरित मिथ्यात्व है) ३. विनय, (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक चारित्र की अपेक्षा न करके सबका बराबर विनय और आदर करना विनय

मिथ्यात्व है) ४. संशय (पदार्थों के स्वरूप में संशय (शुबाह) रखना संशय मिथ्यात्व है), ५. अज्ञान (हित अहित की परीक्षा किए बिना ही श्रद्धान करना अज्ञान मिथ्यात्व है)।

२. अविरति— आत्मा के अपने स्वभाव से हटकर और विषयों में लगना अविरति है। छह काय के जीवों की हिंसा करना और पांच इन्द्रिय और मन को वश में नहीं करना अविरति है।

३. कषाय—जो आत्मा को कषे अर्थात् दुःख दे वह कषाय है इसके २५ भेद हैं—अनंतानु बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक भय जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद।

४. योग— मन में कुछ सोचने से या जिव्हा से कुछ बोलने से या शरीर से कोई काम करने से हमारे मन जिव्हा और शरीर में हलन चलन होता है और इनके हिलने से हमारी आत्मा भी हिलती है। यही योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से ही कर्मों का आस्रव होता है। योग के १५ भेद हैं—

१. सत्यमनो योग, २. असत्य मनोयोग, ३. उभय मनो योग, ४. अनुभय मनोयोग, ५. सत्यवचन योग, ६. असत्य-वचन योग, ७. उभय वचन योग, ८. अनुभय वचन योग,

९. औदारिक काय योग, १०. औदारिक मिश्र काय योग, ११. वैक्रियक काय योग, १२. वैक्रियक मिश्र काय योग, १३. आहारक काय योग, १४. आहारक मिश्र काय योग, १५. कार्माण योग।

इस प्रकार ५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय, १५ योग मिलकर आस्रव के ५७ भेद हैं।

(इन सबकी विस्तार पूर्वक जानकारी गुरुगम से और अन्य पुस्तकों से जानकर आस्रव को त्यागें।)

संवर तत्व

आस्रव का न होना अथवा आस्रव का रोकना, अर्थात् नष्ट कर्मों का नहीं आने देना संवर है।

जैसे जिस नाव में छेद हो जाने से पानी आने लगा था अगर उस नाव के छेद बंद कर दिये जायें तो उसमें पानी आना बंद हो जायेगा, इसी प्रकार जिन परिणामों से कर्म आते हैं उनसे उल्टे परिणाम हों तो कर्मों का आना बंद हो जायेगा। यही संवर है। इसके भी भाव संवर और द्रव्य संवर दो भेद हैं जिन परिणामों से आस्रव नहीं होता है वे भाव संवर कहलाते हैं और उनसे जो पुद्गल परमाणु कर्म रूप होकर आत्मा से नहीं मिलते हैं, उसको द्रव्य संवर कहते हैं।

यह संवर तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा (भावना), बाईस परीषय जय, और पांच चारित्र से होना है जिसकी सविस्तार जानकारी करें यह संवर ग्रहण करने योग्य है।
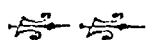
निर्जरा तत्व

कर्मों का थोड़ा थोड़ा भाग क्षय होते जाना निर्जरा है। जैसे नाव में पानी भर गया था, उसे थोड़ा थोड़ा करके बाहर फैंकना, इसी प्रकार आत्मा के जो कर्म इकट्ठे हो रहे हैं, उनका थोड़ा थोड़ा क्षय होना निर्जरा है। इसके भी दो भेद हैं— १. भाव निर्जरा, २. द्रव्य निर्जरा। आत्मा के जिस भाव से कर्म अपना फल देकर नष्ट होता है, वह भाव निर्जरा है और समय पाकर तप से नाश होना द्रव्य निर्जरा है।
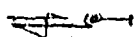
बन्ध तत्व

बन्ध तत्वः—बंध के भी दो भेद हैं— १. भाव बंध, २. द्रव्य बंध, आत्मा के जिन बुरे भावों से कर्म बंध होता है, उसको भाव बंध कहते हैं और उन विकार भावों के कारण जो कर्म के पुद्गल परमाणु आत्मा के

प्रदेशों के साथ दूध और पानी के समान एक-मेक होकर मिल जाते हैं, उसे द्रव्य बंध कहते हैं। मिथ्यात्व अविरति आदि परिणामों के कारण कर्म आते हैं और वे आत्मा के प्रदेशों के साथ मिल जाते हैं । जैसे धूल उड़ कर गीले कपड़े में लग जाती है ।

बंध और आस्रव साथ साथ एक ही समय में होता है तथापि इनमें कार्य कारण भाव है इसलिये जितने आस्रव हैं उन सब को बंध के कारण समझना चाहिये ।

मोक्ष तत्व

सब कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है । जैसे एक नाव का भरा हुवा पानी बाहर फैंका जाता है त्यों त्यों वह नाव ऊपर आती जाती है, यहां तक कि बिलकुल पानी के ऊपर आ जाती है इसी प्रकार संवर पूर्वक निर्जरा होते होते जब सब कर्मों का क्षय हो जाता है और केवल आत्मा का शुद्ध स्वरूप रह जाता है, तभी वह आत्मा उद्दर्वगमन स्वभाव होने से तीनों लोकों के ऊपर जा विराजमान होता है ।

नव तत्व

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष यह नव पदार्थ हैं,

जिसमें चेतना हो अथवा प्राण हो वह जीव कहलाता है और जिसमें चेतन्य शक्ति न हो वह अजीव है,

दुर्गति का निमित पाप है और सद्गति का निमित पुण्य है,

जिस जगह से कर्म आते हैं उसे आस्त्रव कहते हैं और आने वाले कर्मों को रोकना संवर कहलाता है,

बंधे हुये कर्मो को क्षय (खतम) करना निर्जरा है और राग द्वेष वाला आत्मा के विभाव से जो कर्म क्षीर निर समान उसमें मिल जाते हैं उसको बंध कहते हैं,

बंधनों से छुट जाना मोक्ष है,

नव तत्व के स्वरूप को समझने लायक द्रुष्टान्त

संसार सरोवर है। जिसमें मनुष्य शरीर एक नाव है। अनुकूल हवा पुण्य है। प्रति कूल हवा पाप है । नाव में जो छेद हो गया है जिससे (उस छिद्र वाली नाव में) पानी आता है उसे आस्त्रव कहिए। आते पानी को रोकना अर्थात् नष्ट कर्मों का नहीं आने देना संवर है।

और नाव को डुबवा मांडे तेने बंध कहे छे। नाव में आये हुए पानी को निकालना निर्जरा है और जीव भव सागर से किनारे पहुंच जाय उसका नाम मोक्ष है।
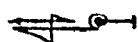
दश धर्म

(१) उत्तम क्षमा (गलती को माफ करना, क्रोध न करना, क्रोध को हटाने के लिये क्षमा है)।

(२) उत्तम मार्दव (मान न करना, मान को हटाने के लिये मार्दव है)।

(३) उत्तम आर्जव (कपट न करना, माया ने हटाववा आर्जव छे)।

(४) उत्तम सत्य (सच बोलना, मिथ्यात्व को हटाने के लिये सत्य है)।

(५) उत्तम शोच (लोभ न करना, अन्त करण को शुद्ध रखना)।

(६) उत्तम संयमे (छे काय के जीवों की दया पालना और पांचों इन्द्रियों को व मनको वश में रखना, अव्रत को हटाववा संयम है)।

(७) उत्तम तप (प्रमाद ने हटाववा तप छे)।

(८) उत्तम त्याग (दान करना) (अशुभ योग ने हटाववा त्याग छे)।

(९) उत्तम आकिंचन (परिग्रह का त्याग करना, बधा कर्मों ने हटाववा अकिम्चनत्य छे)।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य (स्त्री मात्र का त्याग करना, धनानन्द स्वरूप ब्रह्माडमा स्मरण करवा माटे ब्रह्मचार्य छे)।

ऊपर लिखे दश धर्म की जानकारी पूर्ण तौर से गुरुमय से और पुस्तकों से जाणो और आदरे (परमानन्द प्रगट करने के लिए दश धर्मो का पालन आवश्यक है)।
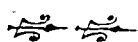
धर्म चतुष्टय

प्रश्न—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप का अर्थ किस तरह स्पष्ट होवे ?

उत्तर—सम्यग दर्शन का अर्थ कल्याण मार्ग पर विश्वास, पवित्र भक्ति अथवा शुद्ध श्रद्धा यही धर्म का मूल है। प्रत्येक धर्म श्रद्धा पर ही निर्भर है। परन्तु तीर्थङ्कर के शासन में श्रद्धा सच्ची धारणा विवेक बगैर दर्शन मोह कहलाती है। जब तक जीव और अजीव का विवेक नहीं होय। तब तक सम्यग दर्शन कहलाता नहीं। आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान बगैर अपन कल्याण मार्ग तरफ चरण भी रख सकते नहीं। अपन इस देह को ही "मैं" "(हुं)" समझकर सब व्यवहार चलाते हैं जिस लिए ही दुनियां

में संकटों की बढ़ौती वास्तव में यह देह तो क्षण-क्षण क्षीण हो रहा है। माता के गर्भ में ही मृत्यु की गोद में बैठा हुआ है अर्थात् जन्म लेने के पहिले ही उसके साथ काल जुड़ा हुआ है परन्तु अपने स्वभाव से ही (अर्थात् आयुष्य से) ही ठीक हुआ है और जड़ तत्व का रंग, गन्ध रस, स्पर्ष, और शब्द अपन (आत्मा) जान रहे हैं शरीर अपने को जान सकता नहीं, आंखें अपने को देख सकती नहीं (मगर) अपन ही आखों को देख सकते हैं। इसलिए यह बात नक्की समझनी चाहिये कि कान, नाक, आंख, और जीभ बगैरे सब इन्द्रियों जड़ और अपने चेतन्य है आंख की छोटी में छोटी काला रंग की टीकी में संसार के असंख्य दृश्यों को देखने की ताकत जहां से आई है जिसका कारण ही अपनी आत्मा है आत्मा से अलग निकाली हुई आंख को कुछ दिखता नहीं आत्मा से अलग हुई आंख को देखने से आंखो का खरा रूप समझ आ जाता है के वो जड़ है। आंख वगैरह सब इन्द्रियों सहित यह देह जड़ है और देह और आत्मा अलग अलग है। इस देह का खरा संबधज नहीं यह भावना जब दृढ़ प्रवृति रूप धारण करती है जबहीज समयग दर्शन कहलाता है और यदि धर्म का मूल है। जिसके बगैर ज्ञान और चारित्र कामयाब नहीं हो सकते कल्याणकारी ज्ञान हीज सम्यग है। पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान और

क्रियाओं देह की सुविधाएं और टीप टाप बढ़ाने से अहंकार और ममत्व का पोषण करके दुःखों को बढ़ा रहे हैं। अहंकार और ममत्व भाव से देह का पोशन करना सम्यग बुद्धि नहीं कहलाती है।

रोग को दूर करने के लिये जैसे वैद्य या डाक्टर पर श्रद्धा करनी पड़ती है उसी तरह संसार के बंधनों से मुक्त होने के लिये शुद्ध देव (कषाय रहित देव) और गुरु (निग्रंथ गुरु) पर श्रद्धा रखनी पड़ती है। वैद्य ऊपर श्रद्धा किये बाद उसके द्वारा निदान करना पड़ता है कि क्या रोग है? और उसका क्या इलाज है? उसी तरह देव गुरु ऊपर श्रद्धा किये बाद (भी) इस बात का ज्ञान रखना पड़ता है कि दु:खों का कारण क्या है? और यह कारण कैसे दूर हो सकते है?

रोग का निदान और औषधि का ज्ञान किये बाद औषधि का सेवन करके पथ्य-परहेज पालन करना पड़ता है उसी तरह संसारिक दुखों का निदान का दर्शन किये बाद जो साधनों का ज्ञान हुवा है उसे आचरण करता तपस्वी सदाचारी जीवन धारण करना पड़ता है नभिज भव दु:ख दूर होता है।

जैसे कपड़ा साफ करने के लिए कपड़े को पानी और साबुन मिश्रण से धोना पड़ता है और सुकाना पड़ता है। इसी तरह अन्त कारण को भी शुद्ध करने के लिए दर्शन,

ज्ञान, चारित्र, और तप यह चार साधनों की जरूरत पड़ती है। जिसमें पाणी समान सम्यग दर्शन की सबसे पहिले आवश्यकता है साबुन बगैर फक्त पाणी से चमक दमक नहीं आती मगर मेल (मल) तो जरूर निकल जाता है। परन्तु पाणी बगैर फक्त साबुन से कपड़ा साफ हो नहीं सकता। इसी आपेक्षा से दर्शन, ज्ञान, चारित्र, और तप इन चारों में से दर्शन को ही प्रथम स्थान देने में आया है।
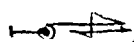
समयग् दर्शन

प्रश्न—सम्यग् दर्शन की पहचान क्या है ?

उत्तर—सम्यग् दर्शन की पहचान के लिए व्यवहार में पांच लक्षण बताये हुवे हैं। (१) प्रशम् (२) संवेग, (३) निर्वेद (४) अनुकंपा और (५) आस्तिक्य।

१. प्रशम्—जो क्रोध से आत्मा भान भूल जाता है जिससे जीवन-प्रयन्त कभी भी क्षमापना का भाव उत्पन्न नहीं होवे और पाप के प्रायश्चित की भावना उत्पन्न नहीं होवे, जिस मान से सद्गुणों प्रत्येक कभी भी थोड़ा भी आदर उत्पन्न नहीं होवे, जिस कपट से सन्तों के सामने भी कपट होय और लोभ से जीवन-प्रयन्त न्याय, अन्याय का थोड़ा भी विचार नहीं होय, ऐसे अन्नतानु बंधी कषायों और मिथ्यात्व का उदय नहीं होय जब समझना कि अपने को

सम्यग् दर्शन प्रगट होने का समय आया है इसी को प्रशम् कहते हैं। जिससे कष्ट की आवक होती है उसे कषाय कहने में आता है। ऐसी कषाय चार होती हैं--क्रोध, मान, माया और लोभ मान मन का स्वभाव है । और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। मान को हस्त कषाय कहते हैं और क्रोध को शस्त्र कषाय कहते हैं। हाथ बगैर शस्त्र कुछ कर सकता नहीं उसी तरह लोभ हस्त कषाय है और माया शस्त्र कषाय है। मान का क्रोध अकल्याणकारी कहलाता है उसी तरह लोभी की माया भी आत्म गुणों का नाश करती है। यह चार कषाय राग द्वेष में शामिल हैं। क्रोध और मान द्वेष कहलाते हैं और माया और लोभ राग कहलाते हैं। जब तक अपने को उनसे दूर रहने की इच्छा नहीं होती तब तक उन्हों का अन्त हो सकता नहीं। इसलिए ही यह कषायों अंनतानुबंधी बनी है और मिथ्यात्व मोहनीय का (विपरीत समझ का क्षय, उपशम, तथा क्षयो) पशम् होता है तब पशम् कहलाता है।

२. सम्यग् मार्ग में-- सच्ची समझ में जो वेग से प्रगति होती है उसको संवेग् कहते हैं। सम्यग् मार्ग में प्रगति होने के लक्षण के उसको प्रत्याख्यान करने की इच्छा होती है।

(प्रत्याख्यान की इच्छा ही सम्यग् मार्ग में प्रगति होने का लक्षण है)

३. निर्वेद---विषयों की आसकति का त्याग होय जब निर्वेद कहलाता है संसार में वर्ण, गंध, रस स्पर्श और शब्द प्रत्येक साता वेदाय और न मिले तो असाता वेदाय, उसी का नाम वेद है और जब इन पांच विषयों को विष तरीके मानने में आवें तब निर्वेद होता है सांप का जहर जिसको चढ़ता है उसको निम्ब कड़वा लगता नहीं मगर जब जहर जैसे जैसे उतरता है, वैसे वैसे निम्ब कड़वा लगना शुरू होता है उसी तरह मिथ्यात्व का जहर जैसे जैसे उतरता है वैसे वैसे संसार के विषयों कड़वे लगते हैं उसीका नाम निर्वेद कहलाता है।

४. अनुकंपा---जब संसार के दुःखी प्राणियों को देखकर मन कंपन होय उसको अनुकम्पा कहते हैं और यह अनुकम्पा की प्रेरणा से जब दुःख रूप संसार से विरकित्त होय जब दया धर्म में रमण कहलाना यही अनुकंपा नामका चौथा लक्षण है।

५. आस्तिक्य---आत्मा आदि तत्वों में जज्वल्यमान यथार्थ श्रद्धा को आस्तिक्य कहते हैं जब केवल भगवान में संपूर्ण ज्ञान गुण प्रगट होता है जब जो वाणी निकलती है उस वाणी पर (और उन्हीं पर) पूरा पूरा विश्वास होना ही पांचवा लक्षण आस्तिक्य कहलाता है। जब अपने को यह विश्वास हो जाता है कि अंधेरे में भी

जहर खायेंगे तो मृत्यु अवश्यम भावी है उसी तरह संसार के विषयों सब दुखों के कारण है और जो नाना प्रकार के पापों का आचरण करने में आते हैं उनका फल अपने को जन्म जन्म में अवश्य भोगना पड़ेगा ऐसे विश्वास से पाप की प्रवृति करने का उत्साह मर जाता है, यही सम्यग् दर्शन कहलाता है ।

॥ नु ह्रीं ऐं नमः ॥

ज्ञान धर्म पंचक

प्रश्न—(१) ज्ञान धर्म याने क्या ?

उत्तर—सिद्धि के रास्ते चलने के लिए जो यथार्थ बोध होता है, वो ज्ञान धर्म कहलाता है,

प्रश्न—(२) ज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—ज्ञान दो प्रकार का होता है परोक्ष और प्रत्यक्ष ।

प्रश्न—(३) परोक्ष ज्ञान का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जो इन्द्रियों और मन का निमित्त से पदार्थों को जानता है, वो परोक्ष ज्ञान कहने में आता है ।

प्रश्न—(४) परोक्ष ज्ञान कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—परोक्ष ज्ञान दो प्रकार के हैं मति ज्ञान और श्रुतज्ञान,

प्रश्न--(५) मीत ज्ञान में और श्रुत ज्ञान में क्या अन्तर है ?

उत्तर--मतिज्ञान बगैर श्रुत ज्ञान नहीं होता है, ज्यों ज्यों मतिज्ञान पुष्ट होता है, बुद्धि के रूप में मतिज्ञान उन्नत होकर विद्या के रूप में श्रुत ज्ञान को पोषरण देता है, मति-ज्ञान में मनन की प्रधानता है। ज्यों श्रुतज्ञान में श्रवरण की प्रधानता है इन दोनों ज्ञानों को अपन अलग अलग कह सकते हैं मगर अलग अलग कर सकते नहीं, व्यवहार में इन दोनों ज्ञानों को प्रत्यक्ष भी कहने में आता है। अपने मत में जब भगवान की ज्ञान शक्ति "इ" मिल जावे जब उसको सन्मति कहते हैं। और परंपरागत श्रुतिओं में से कुरुढिकी "इ" निकले जब सुश्रुत कहलाता है।

जैसे "शव" में मूर्छित चैतन्य की "इ" शक्ति जागृत होवे तब "शिव" कहलाता है और "जन" में सुप्त चारित्र्य शक्ति "इ" का उमेरो होता है तब जिन कहलाता है। उसी तरह अपरणा पूर्व जन्म और पूर्व जोनी परंपरागत ऋढ़िमत मां भगवान वितराग के धर्म की शक्ति "इ" जागृत होवे तब मतिज्ञान कहलाता है। अन्यथा मति ज्ञान नाम को साकार उपयोग तो अपर्याप्ता, साधरण अकेन्द्रिय जीव में भी होता है, उसके बगैर जीव जड़ हो जाय और वो तीन काल में कहीं भी होता नहीं। दिन में वादलों की घनघोर घटा घेराई जाय तो भी दिन को रात कहने

में नहीं आती है। उसी तरह कर्मो के घनिभूत आवरण आ जावे तो भी चैतन्य पुदगल नहीं होवे।

प्रश्न—(६) प्रत्यक्ष ज्ञान कौन कहलाता है?

उत्तर—जो ज्ञान सिर्फ आत्मा से ही उत्पन्न होता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न—(७) प्रत्यक्ष ज्ञान में कितने भेद होते हैं?

उत्तर—प्रत्यक्ष ज्ञान में तीन भेद हैं। अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवल ज्ञान इनको पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहने में आता है। अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान विकल पारमार्थिक हैं और केवल ज्ञान सकल पारमार्थिक कहलाता है।

प्रश्न—(८) अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान, और मति-श्रुत ज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर—अवधिज्ञान रूपीपदार्थों को आत्मा की शक्ति अनुसार जानता है और मन पर्यव ज्ञानी मनोवर्गणा के पुदगलों को प्रत्यक्ष देख कर मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा भाव और विभाव के लिए अनुमान करता है। अवधिज्ञान की अपेक्षा मन पर्यवज्ञान के स्वामी बहुत कम हैं कारण के मन पर्यवज्ञान अत्यंत शुद्ध, अप्रचत्व महा-वृत्तियों को होता है और अवधिज्ञान की अपेक्षा मन पर्यवज्ञान का क्षेत्र अनंतमा भाग कम है। और शुद्धि अनंत गुणी ज्यादा है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मन और

इन्द्रियों के निमित से परोक्ष रूपे आत्मा आदि पदार्थों को जानता है और मनपर्यवज्ञान आत्मा से मन को देखता है।

प्रश्न—(९) केवल ज्ञान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—आत्मा के ज्ञान धर्म का संपूर्ण विकाश हो जावे तब केवलज्ञान कहलाता है और केवलज्ञान होये बाद उसको जाणने योग्य कुछ रहता नहीं ज्ञान का आवरण रूप कर्म जब निर्मूल हो जावे तब केवल (फक्त) ज्ञान रह जावे तो वहां अज्ञान और ज्ञातव्य क्या होय ? केवल प्रकाश ही प्रकाश व्यवहारमय यह पारमार्थिक प्रत्यक्ष रूप संपूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञता के नाम से प्रसिद्ध है।

सारी जानकारी गुरुगम से करनी चाहिए

(अथ दोहा)

कुंभे बांध्यों जल रहे,
जल बिन कुंभ न होय।
ज्ञानें बांध्यो मन रहे,
गुरु बिन ज्ञान न होय ॥१॥
गुरु दीवो गुरु देवता,
गुरु विन घोर अंधार।
जे गुरु वाणी बेगला,
रड़ वड़िया संसार ॥२॥

ध्यान संबंधी प्रश्नोत्तर

प्रश्न—ध्यान कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—ध्यान चार प्रकार के हैं आर्त्तध्यान, रोद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

प्रश्न—आर्त्तध्यान और रोद्रध्यान में क्या फरक है ?

उत्तर—आर्त्तध्यान और रोद्रध्यान त्यागने योग्य है। मगर दूसरों के हित के लिये किया हुवा आर्त्तध्यान शुभ कहलाता है तो भी आश्रव है और अंत में छुट जाता है। रोद्रध्यान दुर्गतिदातार है और वास्तविक रीती से स्वार्थ के लिए किया हुआ आर्त्त और रोद्र ध्यान दुर्ध्यान कहलाता है।

धर्मध्यान और शुक्लध्यान को स्पष्ट समझने के लिए उसका वर्णन करने में आता है। संसार में जब जीवों को दुःख आता है तब वें आर्त्तध्यानी होते हैं हाय हाय करते हैं जिससे यह ध्यान कानिष्ट कहलाता है तीव्र आर्त्तध्यानी निर्बल और हैवान कहलाता है। रोद्रध्यानी दुःख में दुसरों को वैरी मान कर हिंसा आदि में प्रवृत्त होता है जिससे यह ध्यान दुष्ट और दुर्बल ध्यान कहलाता है तीव्र रोद्रध्यानी शैतान है। मुड़ीवादी और साम्राज्यवादी लोगों की मनोवृत्ति में रोद्रध्यान रह सकता है। परन्तु प्रत्येक सम्राट और धनाढ्य रोद्रध्यानी होते ही हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है।

उनहों की मनोवृत्ति में मुढ़ीवाद और साम्राज्यवाद नहीं था। राम साम्राज्यवाद फैलाने के लिये लंका और किस्किंधा को जीतकर, भरत और शत्रुघ्न को वहां का अधिकारी नहीं बनाया, परन्तु रावण के भाई विभिषण और वाली के भाई सुग्रीव को राजा बनाकर वाली पुत्र अंगद को युवराज बनाया था और सोने की लंका में से अयोध्या की मुढ़ी वडाने के लिए एक तिनका भी नहीं लाये। भरत से मिलने के लिये जल्दी अयोध्या आने का था, जिससे लंका से पुष्पक विमान मांगकर लाये थे और पीछे जिनका था उनको भेज दिया। पण भामाशाह ने महाराणा प्रताप को देश रक्षा के लिये सब समर्पित कर दिया था, उसे मुढ़ीवाद का साम्राज्यवाद नहीं कह सकते। एक नागावाला भी गर्ज के समय मुढ़ीवादी हो जाता है और बारह आना के स्थान पर तीन-चार रुपये भी मांग लेता है उसे भी मुढ़ीवादी समझना चाहिए। एक भिक्षुक को भी राज्य लालसा हो तो वो भी साम्राज्यवादी कहलाता है। (रोद्रध्यानी) खुद के स्वार्थ के लिये दूसरों को रुलाता है, कष्ट देता है अत्याचार करता है वो रोद्रध्यानी है। दलित पीड़ित, प्रमादि काया, जो ये समभाव नहीं रखकर आर्तध्यानी करे वो आर्तध्यानी कहलाता है।

प्रश्न— धर्म ध्यान का अर्थ क्या है।

चिड़ता है और मनोमन मुरझाता है परन्तु धर्म ध्यानी विचारक होता है और समझता है कि दुःख का फल मेरे हृदय में है तो उसका बीज भी फल में ही होना चाहिए। अर्थात मेरे कर्मों का ही दोष है ऐसा समझकर दुष्ट कर्मों को दूर करने का शान्त भाव से प्रयत्न करता है और आये हुए दुःख को आन्नद से सहन करता है, प्रभु की आज्ञा का पालन करता है और अपने अपराधों से दूर रहकर सब पापों को निर्मूल करने का सही प्रयत्न करता है लोक के स्वरूप को समझकर समान भाव से सच्चा मनुष्य के जैसा योग्य पुरुषार्थ करता है वो सबल मानव श्रेष्ट कहलाता है।

(धर्म ध्यान का किंचिन खुलासा धर्म ध्यान के काउसगग से जाणो और चार ध्यान का विस्तार से खुलासा अन्य ग्रन्थों से जाणो रोज धर्मध्यान का काउसग करना फायदेमन्द है।)

प्रश्न– शुक्ल ध्यान का क्या अर्थ है ?

उत्तर– यह ध्यान सर्वोत्तम कहलाता है यह ध्यान वर्तमान काल में इस क्षेत्र में किसी जीव को प्राप्त होना सम्भव नहीं है प्रबल परमेष्टी अरिहन्त प्रभु उत्कृष्ट शुक्ल-ध्यानी है जो निरन्तर शान्त रहते हैं, सुख दुःख की अवस्थाओं में समान रहते हैं निन्दा और प्रशंसा का जिसके ऊपर असर होता नहीं वे शुक्ल ध्यानी कहलाते हैं जिस तरह सूर्य के सामने कितने भी काले सफेद बादल आ जायें तो भी उसके प्रकाश को नष्ट नहीं कर सकते उसी तरह

शुक्ल ध्यानी के ऊपर चाहे कितने ही बड़े से बड़े विघ्न आयें तो भी उसके चित को मलीन नहीं कर सकते। सच्ची तरह से देखा जाय तो सूर्य के आगे बादल आते नहीं वे तो हमारी आंखों के आगे आते हैं, सूर्य के प्रकाश में तो वे दिखते हैं। उसी तरह शुक्लध्यानी समझता है कि यह सुख-दुःख के बादल मेरे सामने नहीं मगर मेरी आत्मा की ज्ञान ज्योति से वे दिखते हैं जैसे सूर्य की ताप शक्ति के निमित से बादल बनें और इसी प्रकाश शक्ति ... दिखाते हैं मगर उसके किरणों को भिजा सकते नहीं। उसी तरह आत्मा की विभाव शक्ति के निमित से कर्मो तैयार होये हैं परन्तु उसके गुणों को निमूल कर सकते नहीं शुक्ल ध्यानी प्रत्येक वस्तु को जुदी जुदी अवस्थाओं में गुण और रहस्य का चितवन करने से शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं उसमें स्थिर रहता है। अनेक रूपता में एकता समझकर स्वरूप में रमण करता है और पीछे सुक्ष्म मन वचन काया का निरोध करके निष्कंष स्थिति द्वारा सिद्धगति का अधिकारी हो जाता है। चित की पूर्ण निर्मलता को शुक्ल ध्यान कहते हैं।

इस प्रकार अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप यह नव पदों को ठीक ठीक अर्थ समझकर उसके उपर श्रद्धा करके जीवन में उतारने में आवे तो सब साधन सफल होते और परम आनन्द का उत्तम सिद्धि स्थान प्राप्त हो जाता है।

प्रथम भाग समाप्त